- *केरल में पंचायती राज का अनूठा प्रयोग*
- *वानिकी विकास परियोजना*
- *भारत गौरव : अमर्त्य सेन*

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

दिसम्बर 1998 मूल्य : पांच रुपये

पंचायती राज

जनता को सत्ता

पंचायती राज संस्थाएं आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की स्कीमें तैयार करती हैं और उन्हें लागू करती हैं। इन संस्थाओं के लिए गांव, खण्ड और जिला स्तर पर प्रत्यक्ष चुनाव होता है और इनसे गांवों के लोगों को यह शक्ति मिलती है कि वे अपने क्षेत्र के आर्थिक विकास की प्रक्रिया निर्धारित करें और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करें। पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं को निश्चित प्रतिनिधित्व देने से गांव के विकास में लोग शामिल भी होंगे और भागीदार भी बनेंगे।

" हम महत्वपूर्ण निर्णय करने लगे हैं ताकि इन स्कीमों से अधिकतम लाभ उठा सकें। "

राजस्थान के जयपुर जिले का बेगास गांव

" गांव के स्त्री-पुरूषों ने हमारे में विश्वास प्रकट किया है। हम उनकी आशाओं के अनुरूप उतरेंगे। हम सभी को आर्थिक और सामाजिक न्याय दिलाने की दिशा में काम करेंगे। हम विकास की सभी स्कीमों का उपयोग अपने लोगों की आवश्यकता के अनुरूप करेंगे "।

कुल्टीकारी गांव, जिला मिदनापुर, पश्चिम बंगाल की एक पूर्ण महिला पंचायत की सदस्याएं

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी

davp 96448

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय
की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 44 | अंक 2 | अग्रहायण-पौष 1920 | दिसम्बर 1998

संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
रजनी

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011-3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
के.एस. जगन्नाथ राव

आवरण सज्जा
एम.एम. मलिक

फोटो साभार :
रमेश चन्द्र, ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत, विज्ञापन और प्रसार संख्या प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

मूल्य एक प्रति : पांच रुपये
वार्षिक शुल्क : 50 रुपये
द्विवार्षिक : 95 रुपये
त्रिवार्षिक : 135 रुपये

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

- केरल में पंचायती राज का अनूठा प्रयोग — डा. कैलाश चन्द्र पपनै — 3
- विकेंद्रित योजना : एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण — डा. अनिल दत्त मिश्रा — 5
- राजस्थान की पंचायती राज संस्थाओं के संदर्भ में राज्य वित्त आयोग की भूमिका — अमरेन्द्र कुमार तिवारी — 9
- मध्य प्रदेश की ग्रामीण शिक्षा व्यवस्था में पंचायतों की भूमिका — संदीप जोशी — 15
- महिला समूह और ग्राम उत्थान — डा. इंदिरा मिश्र — 19
- भूमिगत जल स्तर घटने के कारण और उसके सुधार के उपाय — मनभरन प्रसाद द्विवेदी — 21
- गन्ने का रस (कहानी) — भुवनेश्वर द्विवेदी — 24
- अनूठी सरपंच : लीलाबाई आंजना — हरिशंकर शर्मा — 27
- हथकरघे से आत्मनिर्भरता की डगर — ओम मिश्रा — 28
- पंचायती राज बना वरदान — आशीष खरे — 31
- रेशम योजना से हजारों परिवारों को रोजगार — डा. बृजनाथ सिंह — 32
- भारत गौरव : अमर्त्य सेन — वेद प्रकाश अरोड़ा — 33
- वानिकी विकास परियोजना : प्रगति के तीन वर्ष — घनश्याम वर्मा — 37
- राजस्थान में बेहद लोकप्रिय हो रही है बी.ओ.टी. सड़क निर्माण योजना — पी.आर. त्रिवेदी — 39
- पंचायतें और सहकारी समितियां (स्थायी स्तम्भ) — जवाहरलाल नेहरू — 41

पाठकों के विचार

ग्रामीणों के लिए वरदान

कुरुक्षेत्र का जून 1998 का अंक मिला, बहुत प्रसन्नता हुई। ममता की कहानी *रमा* समाज का कल्याण करने की प्रेरणा देती है। पर्यावरण प्रदूषण आज के युग की बहुत कठिन समस्या है। इस अंक में तत्संबंधी सामग्री की प्रचुरता है। यह अत्यंत प्रशंसनीय है। अपना देश गांवों का देश है। यहां की अधिकांश जनता गांवों में निवास करती है। *भारत माता ग्रामवासिनी*! इस अंक में ग्रामीण समस्याओं पर बहुत ध्यान दिया गया है तथा उनके निराकरण के लिए उचित सुझाव दिए गए हैं। यह मासिक गांवों के लिए वरदान है। *पारिस्थितिकी संकट....*नामक लेख आंख खोलने वाला तो है ही, वह कुछ सोचने के लिए भी विवश करता है। आज के रुग्ण युग का मानव प्रकृति से दूर होता जा रहा है तथा वह हरी-भरी धरती को मरुभूमि बना रहा है। इस लेख में इसकी ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया गया है तथा मानव का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए उपयोगी परामर्श दिया गया है। इस अंक की *गौर करें* शीर्षक कविता 'आओ पर्यावरण हरा करें' का शुभ संदेश देती है।

श्रीभागवत पाण्डेय 'सुधांशु', कठार, गाजीपुर (उत्तर प्रदेश)

शोषण बढ़ रहा है

कुरुक्षेत्र के अगस्त 1998 अंक में प्रकाशित श्री दिलीप कुमार तेतरवे की कहानी *परिन्दे* वाकई बहुत अच्छी लगी। हमारे देश में कारखानों, चाय बागानों और उद्योगों में शोषण बढ़ता जा रहा है। मालिक वर्ग आर्थिक रूप से मजबूत होते हैं जबकि मजदूर वर्ग कमजोर होते हैं। इसी का फायदा उठाते हुए वे लोग मजदूरों का शोषण करते हैं। मजदूरों को गाली देना, उन्हें मारना-पीटना, उनके विरुद्ध अदालत में छोटी-छोटी बातों पर मुकदमा कर देना, बिना नोटिस के तालाबंदी करना, आम बात हो गई है। महिलाएं तो अपने को असुरक्षित ही महसूस करती हैं।

मुक्तेश्वर प्रसाद, कुण्डको, पीरटांड गिरिडीह (बिहार)

ग्रामीण युवकों की भागीदारी सुनिश्चित करें

कुरुक्षेत्र के जुलाई तथा अगस्त 1998 के अंक में प्रकाशित *बजट और गांव* तथा *पचास वर्ष की उपलब्धियां और भावी संभावनाएं* पर लेख रोचक और अच्छे लगे।

कृषि, आवास, बेरोजगारी, किसान क्रेडिट कार्ड और फसल बीमा योजना से संबंधित प्रावधान सराहनीय कदम हैं, पर इनके सफल क्रियान्वयन की आवश्यकता है। खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त हो चुकी है, परंतु गरीबी, बेरोजगारी, जनसंख्या, आवासीय कमी, बाल मजदूरी, भुखमरी, अशिक्षा जैसी समस्याएं एक बड़ी चुनौती हैं। इन क्षेत्रों में अब तक की सरकारों द्वारा लगातार प्रयास जारी हैं, जिसे और तेज करने की आवश्यकता है। व्यावसायिक शिक्षा से ग्रामीण छात्र वंचित हैं, क्योंकि उनके पास धनाभाव होता है। प्रशासनिक सेवाओं में भी ग्रामीण पृष्ठभूमि के गरीब छात्र, जो ग्रामीण समस्याओं की बेहतर समझ रखते हैं और अवसर मिलने पर अपनी क्षमता भी सिद्ध कर सकते हैं, आर्थिक कठिनाइयों के कारण सफल नहीं हो पाते हैं। अत: आवश्यकता है—ग्रामीण युवकों की भागीदारी सुनिश्चित करने की। तभी देश खुशहाल बनेगा।

संजय कुमार सिंह, चेचर, वैशाली (बिहार)

सत्व विवेचनी अंक

कुरुक्षेत्र का अगस्त 1998 अंक हस्तगत हुआ, पाकर प्रसन्नता हुई। विभिन्न लेखकों ने हर बार की तरह विविध विषयों पर बहुआयामी और सुरुचिपूर्ण ढंग से अपनी बातों को प्रस्तुत किया है।

आशारानी व्होरा ने अपनों से अलहदा हो चुकी विदुषियों, जिसने हमारे मुल्क को तथा हमारी चेतना को आजाद कराने में प्रमुख भूमिका अदा की, की अनमोल यादों को अक्षुण्ण रख तथा उनके जीवन के फलसफों को पेश कर सच्चा नमन किया है।

पंचायती राज व्यवस्था के अतीत की झलक तथा भविष्य में उनकी स्थिति पर डा. महीपाल द्वारा डाला गया प्रकाश, सराहनीय प्रयास है।

'सा विद्या या विमुक्तये' के मार्ग को प्रशस्त करती हुई अनिरुद्ध शरण मिश्र तथा पी.एल. सरोज ने अपने लेख में साक्षरता कार्यक्रमों के विविध आयामों और शिक्षा प्रसार के क्रम-विकास का सुन्दर चित्रण किया है।

गुणकारी एवं अमृत तुल्य फल आंवला, जिसके रासायनिक प्रयोग से अश्विनी कुमार ने वृद्ध च्यवन ऋषि को जवान बना दिया था, के बारे में शैलेश त्रिपाठी ने अप्रतिम जानकारी देकर इस अमूल्य धरोहर के प्रति ज्ञान में अभिवृद्धि की है। डा. वीणापाणि सिंह ने अपने प्रयास से कमर और पीठ दर्द से बचाव हेतु अच्छे सुझाव दिए हैं। *कुछ तथ्य* में महाराज ने नैतिकता अभिवृद्धि में अच्छा-खासा योगदान किया है।

संपर्क अंक हरेक पहलू के एक-एक तत्व की सारगर्भित विवेचना कर रहा है।

अखिलेन्द्र नाथ, कुंज भवन, गोलाघाट, भागलपुर (बिहार)

चंद पैसों के लिए अमानवीय कृत्य करने वालों से सवाल

कुरुक्षेत्र का सितम्बर अंक (*महिला शिक्षा : दशा और दिशा*) पूर्व की भांति काफी उपयोगी लगा। इस अंक में चाणक्य की महत्वपूर्ण उक्ति

(शेष पृष्ठ 17 पर)

केरल में पंचायती राज का अनूठा प्रयोग

डा. कैलाश चन्द्र पपनै

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार राज्य मंत्री श्री बाबागौड़ा पाटिल ने जब केरल की पंचायती राज व्यवस्था को अन्य राज्यों के लिए भी आदर्श और अनुकरणीय बताया तो यह अनायास नहीं था। श्री पाटिल ने इस वर्ष 26 अक्तूबर को त्रिवेन्द्रम में अपने मंत्रालय की संसदीय सलाहकार समिति की बैठक के बाद केरल में पंचायती राज व्यवस्था की समीक्षा की और वहां केन्द्रीय ग्रामीण विकास योजनाओं की समीक्षा के संदर्भ में अपनी टिप्पणी भी की।

वास्तव में केरल में पंचायती राज व्यवस्था में जिस ईमानदारी के साथ विकेन्द्रीकरण तथा वित्तीय साधनों के बंटवारे की व्यवस्था की गई है, अन्य राज्य उससे सबक ले सकते हैं।

केरल में किया जा रहा प्रयोग इस दृष्टि से भी अनूठा है कि न केवल पंचायती राज संस्थाओं को अधिकार-सम्पन्न और कारगर बनाया गया है वरन् राज्य सरकार ने केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा प्रायोजित योजनाओं को पंचायतों की योजनाओं के साथ समेकित करने का अत्यंत महत्वपूर्ण नीतिगत फैसला भी किया है। केरल ऐसा फैसला करने वाला पहला राज्य है।

राज्य में पंचायती राज प्रणाली की एक उल्लेखनीय बात यह है कि यहां त्रि-स्तरीय पंचायत व्यवस्था, ऊपरी पंचायत द्वारा निचले स्तर की पंचायत पर अंकुश रखने की परंपरा से हट कर है। यहां प्रत्येक स्तर की पंचायत दूसरी पंचायत से स्वतंत्र है तथा इसके कार्यों और अधिकारों का निर्धारण स्पष्ट रूप से किया गया है। परंतु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि उनके बीच परस्पर समन्वय की अवहेलना की गई है। समन्वय की दृष्टि से यह व्यवस्था की गई है कि निम्न स्तर के पंचायती निकाय का अध्यक्ष उच्च पंचायत का पदेन सदस्य होता है। इतना ही नहीं, उसे विभिन्न मुद्दों पर फैसला करते समय मतदान का अधिकार भी प्राप्त है। अपवाद स्वरूप उसे उच्च पंचायत में विभिन्न पदाधिकारियों के चुनाव तथा अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा के अवसर पर मतदान के अधिकार से वंचित रखा गया है।

केरल सरकार ने पंचायत, ब्लाक तथा जिला स्तर की अधिकांश संस्थाओं को सम्बद्ध पंचायत के सुपुर्द कर दिया है। इन संस्थाओं और कार्यालयों के हस्तांतरण के साथ ही सभी कर्मचारी तथा चल व अचल सम्पत्ति भी सम्बद्ध पंचायत को सौंप दी गई है। इससे पंचायतों को कामकाज में वांछित स्वायत्तता प्राप्त हुई है। इतना ही नहीं, राज्य सरकार भी पंचायतों के काम में दखलन्दाजी नहीं करती है। कानूनी दृष्टि से राज्य सरकार को पंचायतों के प्रस्ताव रद्द करने या स्थगित करने, निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों की सदस्यता रद्द करने या निलम्बित करने या पंचायतों को ही भंग कर देने का अधिकार प्राप्त है परंतु सरकार सिद्धांतत: इन अधिकारों के इस्तेमाल के विरुद्ध है। राज्य सरकार ने अपने अधिकार किसी अधिकारी को सौंपे भी नहीं हैं। यह नियम सामान्य रूप से माना जाता है कि विकास संबंधी किसी भी फैसले को उच्च अधिकार प्राप्त व्यक्ति या संस्था द्वारा बदला न जाए।

राज्य में 1995 में त्रि-स्तरीय पंचायत प्रणाली लागू होने से पहले ग्रामीण विकास योजनाओं पर अमल के लिए पंचायतों की भूमिका अत्यंत सीमित थी। केरल सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं तथा जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के बीच समन्वय के लिए जिला पंचायत के अध्यक्ष को ही जिला ग्रामीण विकास एजेंसी का अध्यक्ष बनाने का फैसला किया। इसके बाद दोनों संस्थाओं के विलय का फैसला भी कर लिया गया है जो कि लागू होने की प्रक्रिया में है। अब पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लाभार्थियों, परियोजनाओं, उनके अमल के स्थान के चुनाव तथा अमल पर निगरानी जैसे अहम् मसलों पर निर्णय करने और आवश्यक कदम उठाने में सक्षम हैं।

विकेन्द्रीकरण करने व पंचायतों को अधिकार-सम्पन्न करने का कोई भी कार्य वित्तीय संसाधनों के बिना सफल नहीं हो सकता। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पंचायतों की वित्तीय स्वायत्तता की तरफ भी ध्यान दिया गया है। राज्य सरकार ने राज्य की संचित निधि से अलग एक पंचायत कोष की स्थापना की है। केन्द्र और राज्य सरकार की ग्रामीण विकास योजनाओं के लिए आने वाला धन इस पंचायत कोष में हस्तांतरित किया जाता है। इसके अलावा राज्य के स्थानीय प्रशासन विभाग द्वारा स्वतंत्र रूप से दी जाने वाली अनुदान सहायता को भी इसी कोष में हस्तांतरित किया जाता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण फैसले के अंतर्गत केरल सरकार ने अपनी योजना राशि का 40 प्रतिशत हिस्सा स्थानीय निकायों को हस्तांतरित करने का

फैसला किया है। राज्य की 3,100 करोड़ रुपये की योजना राशि में से 1,178 करोड़ रुपये स्थानीय निकायों को आबंटित किए गए हैं। इसमें से 950 करोड़ रुपये की राशि स्थानीय स्तर पर योजनाएं तैयार करने और उन पर अमल के लिए अनुदान के रूप में है। अनुदान के उपयोग के लिए मोटे तौर पर सीमाएं निर्धारित हैं। पंचायतों को कम-से-कम 40 प्रतिशत हिस्सा उत्पादक क्षेत्रों में तथा अधिकतम 30 प्रतिशत ढांचागत मदों पर खर्च करने को कहा गया है। यह भी सुनिश्चित किया गया है कि यह राशि वास्तव में पंचायती राज संस्थाओं तक पहुंचे तथा इन्हें अन्य मदों पर खर्च करने की गुंजाइश न रहे। इसका एक अभिनव तरीका खोजा गया है कि राज्य सरकार के वार्षिक बजट के एक परिशिष्ट में प्रत्येक पंचायत के नाम से वह राशि दिखाई जाती है जो कि उसे हस्तांतरित की गई है।

पंचायतों की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ रखने की दृष्टि से पंचायती राज कानून में ही पंचायतों को संसाधन जुटाने के लिए पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं। इसके अलावा राज्य सरकार को वित्त आयोग की सिफारिशों का पालन करते हुए पंचायतों को कोष देना होता है। कानून के अंतर्गत पंचायतों को ऋण जुटाने का अधिकार भी प्राप्त है। राज्य सरकार पंचायतों को बाजार-ऋण उपलब्ध कराने के लिए शीघ्र ही एक संस्थान स्थापित करेगी।

केरल में पंचायती राज व्यवस्था की सफलता का प्रमुख कारण राज्य की जनता की जागरूकता है। इस सफलता का रहस्य उच्च साक्षरता दर में छिपा हुआ है। राज्य सरकार भी लोगों के बीच जागरूकता बढ़ाने की दिशा में सक्रिय रही है। पंचायतों में कामकाज के तौर-तरीकों और लोगों के अधिकारों के बारे में स्थानीय समाचार पत्रों में आम आदमी की भाषा में विज्ञापन दिए गए। एक जन आंदोलन के रूप में जागरूकता अभियान चलाते हुए स्थानीय प्रशासन विभाग के मंत्री की तरफ से एक पत्र घर-घर पहुंचाया गया। इस पत्र में पंचायत व्यवस्था से जुड़े सभी लोगों के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का स्पष्ट उल्लेख किया गया था। अब राज्य सरकार ने विकेन्द्रीकरण प्रक्रिया की निगरानी के लिए राज्य विकास परिषद की स्थापना का निर्णय भी किया है। मुख्यमंत्री की अध्यक्षता वाली इस परिषद में विपक्ष के नेता को उपाध्यक्ष पद दिया जाएगा तथा मंत्री और पंचायतों के अध्यक्ष व कुछ अन्य पंचायत प्रतिनिधि सदस्य के रूप में होंगे।

लोगों को कानूनों और अधिकारों के बारे में जागरूक बनाने के साथ ही यह भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि कार्यक्रमों का क्रियान्वयन सफलता के साथ किया जाए। इस दृष्टि से पंचायती राज संस्थाओं के लिए विस्तृत योजना तैयार की गई। योजना तैयार करने की कार्यविधि को भी स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया। उदाहरण के लिए निर्धारित कार्य सूची को लिया जा सकता है :

1. ग्राम सभा द्वारा गत वर्ष पेश किए गए प्रस्तावों में उल्लिखित विभिन्न विषयों पर कार्य दल विचार करेंगे और ठोस परियोजना प्रस्ताव तैयार करेंगे।
2. इसके बाद ग्राम सभा इन प्रस्तावों के बीच प्राथमिकताओं का निर्धारण करेंगी।
3. इन परियोजनाओं पर पंचायत स्तर पर आयोजित गोष्ठियों में चर्च की जाएगी।
4. पंचायतें योजना को अंतिम रूप देंगी।
5. सरकारी अधिकारियों तथा गैर-सरकारी विशेषज्ञों की समिति द्वारा गहरी पड़ताल के बाद जिला पंचायत समिति योजना को मंजूरी देगी। विशेषज्ञ समितियों को प्राथमिकताएं बदलने का अधिकार नहीं है। वे परियोजना की लागत और उस पर अमल करने के तरीकों में कमियों को ठीक कर सकती हैं।

पंचायतों द्वारा योजना को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया पूरी करने के लिए इस वर्ष अक्तूबर तक का समय दिया गया था। इसमें केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों का समन्वय भी शामिल था। राज्य के ग्रामीण विकास विभाग ने यह शर्त भी लगाई थी कि यह कार्य पूरा होने के बाद ही केन्द्र सरकार से प्राप्त सहायता विकास योजनाओं के लिए सुलभ कराई जाएगी। इसी वजह से राज्य में इस वर्ष अब तक केन्द्रीय सहायता के उपयोग का प्रतिशत कम था। राज्य सरकार को विश्वास है कि अगले तीन-चार माह में पूरी आबंटित राशि का सदुपयोग हो जाएगा।

केरल सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं की सफलता की दिशा में व्यावहारिक उपायों का सहारा लिया है। इस धारणा को मार्ग-दर्शक बना कर रखा गया है कि सरकार नियम-कानूनों से भी बढ़ कर, सरकारी आदेशों के माध्यम से विकास कार्यक्रमों को सफलता की राह पर ले जा सकती है। कई राज्यों द्वारा पंचायती राज व्यवस्था की अवहेलना के निराशाजनक परिदृश्य के बावजूद केरल का अनुभव इस व्यवस्था की सफलता और ग्राम स्वराज के सपने के साकार होने की उम्मीद जगाता है। □

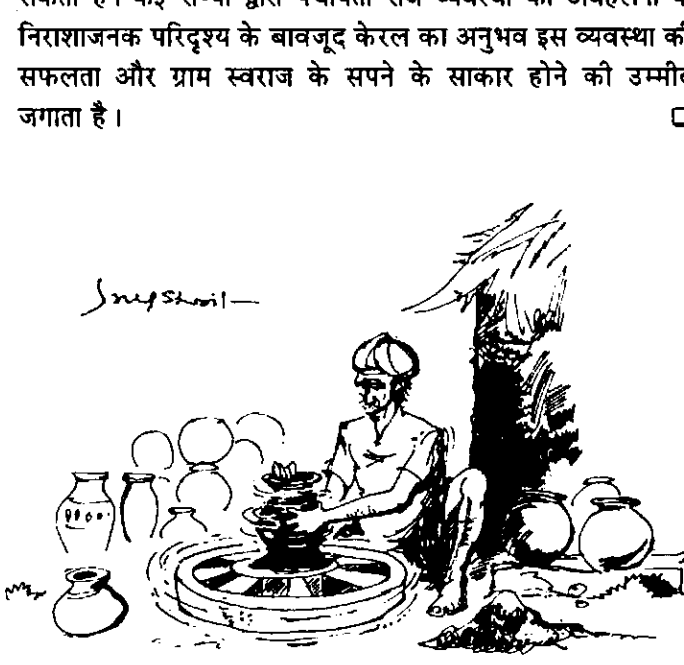

विकेंद्रित योजना : एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण

डा. अनिल दत्त मिश्रा*

भारत में विकेंद्रित योजना प्रणाली विभिन्न चरणों से गुजरी है, इससे अनेक स्तरों पर विभिन्न योजनाओं का भिन्न-भिन्न अर्थ लगाया जाता है। यह विविधता योजना के सैद्धांतिक और कार्यान्वयन दोनों पक्षों में देखने को मिलती है। गांधीवादी विचारक स्थानीय स्तर पर योजना बनाने तथा उसमें लोगों की भागीदारी की वकालत करते हैं। ये विचारक गांव को इस योजना की प्रथम इकाई मानते हैं और गांव को आत्मनिर्भर इकाई बनाकर 'ग्राम स्वराज' की अवधारणा को व्यावहारिक रूप देना चाहते हैं।

दूसरी तरफ कुछ विचारकों का यह मत है कि प्रबंधकीय/प्रशासकीय विकेंद्रीकरण हो। इसमें निम्न स्तर की प्रशासकीय इकाइयों को परियोजना बनाने तथा आर्थिक क्रियाकलापों के समन्वय का अधिकार हो। परंतु यह जरूरी नहीं है कि स्थानीय योजना की प्रणाली राष्ट्रीय या राज्य स्तर की प्रणाली की तरह ही हो क्योंकि स्थानीय समस्याएं और आवश्यकताएं अलग-अलग होती हैं। व्यवहार में विकेंद्रीकृत प्रयासों का तात्पर्य है—प्रशासकीय समन्वय को ढीला करना तथा निम्न स्तर के कुछ कार्य संपादित करना। इस विचारधारा में आत्मनिर्भरता पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया। साथ ही लोगों की भागीदारी भी सुनिश्चित नहीं हो पाई तथा स्थानीय प्रभावशाली लोगों का प्रभाव स्थानीय निकायों तथा संस्थाओं पर बढ़ गया।

तीसरा, कुछ विचारकों का मानना है कि हमें ग्रामीणों तथा गरीबों के विकास पर ध्यान देना चाहिए। उनकी मान्यता है कि उनसे संबंधित कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की जाए तथा उन लोगों को उसमें भागीदार बनाकर विशेष जगह के लिए विशेष प्रकार की योजनाएं क्रियान्वित की जाएं। इसके तहत गरीबों की उनमें भागीदारी हो, उन लोगों की स्थानीय संस्थाओं पर पकड़ हो या उनका राजनीतिक दबाव स्थापित किया जाए। अत: गरीब लोगों का संगठन ऐसा हो कि विरल संसाधनों पर उनका नियंत्रण बने।

*व्याख्याता, जैन विश्वभारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय, लाडनू राजस्थान।

वास्तव में विकेंद्रीकरण की अवधारणा में परिवर्तन (प्रशासनिक विकेंद्रीकरण) से लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण ने संपूर्ण योजना के संगठन तथा कार्यप्रणाली को बदलने के लिए बाध्य कर दिया है।

सैद्धांतिक रूप-रेखा

'वर्किंग ग्रुप आन डिस्ट्रिक प्लानिंग 1984' की रिपोर्ट के छपने से विकेंद्रीकृत योजना का अभिप्राय डिस्ट्रिक योजना से हो गया, जो उचित नहीं है। विकेंद्रीकृत योजना का अभिप्राय स्थानीय क्षेत्रों की आवश्यकता को अच्छे ढंग से समझने से है, जिससे सही जानकारी के आधार पर निर्णय लेना संभव हो सके। साथ ही स्थानीय लोगों की आवाज को नीति-निर्धारण में ज्यादा से ज्यादा स्थान दिया जाए। इसके लिए विकास का कार्यक्रम बनाना आवश्यक है। इससे उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति ज्यादा से ज्यादा हो पाएगी। जिला नियोजन एक प्रकार से क्षेत्र विशेष का उपराज्यीय नियोजन है जो राष्ट्रीय तथा राज्य की आवश्यकता पूरी करने में मदद करता है और स्थानीय संसाधनों तथा क्षमता का भरपूर उपयोग किस प्रकार हो सकता है—इस पर भी विचार करता है। जिला को एक स्थानीय क्षेत्र-इकाई के रूप में स्वीकार किया गया। यह क्षेत्र नियोजन का है, जिसमें जिले को उपराज्यीय निर्णय लेने की एक इकाई माना गया। इसलिए विकेंद्रीकृत योजना की प्रक्रिया में राज्य स्तर के बाद दूसरा स्तर जिले को माना गया।

विकेंद्रीकरण योजना एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे लोगों को भागीदार बनाकर उन्हें योजना के निकट लाया जाता है। यह एक बहुस्तरीय निकाय है जिसका नियोजन राजनीति, प्रशासन तथा प्रबंध स्तर पर होता है। विकेंद्रीकरण की योजना न तो केंद्रीय योजना का प्रतिस्थान है, न ही नीचे से चलने वाली योजना प्रक्रिया है। यह वास्तव में दोहरी प्रक्रिया है जो ऊपरी स्तर से (राष्ट्रीय या राज्य स्तर) तथा निम्न स्तर (स्थानीय स्तर) पर साथ-साथ चलती है तथा एक-दूसरे से एक बिंदु पर मिल जाती है। जहां केंद्रित योजना अनुपयोगी हो जाती है तथा जिसके ऊपर लघु योजना बेकार हो जाती है, वहां यह बिंदु जिला स्तर पर विकास प्रशासन के रूप में चुना जा सकता है। जबकि राष्ट्रीय योजनाएं राष्ट्रीय विकास के प्रतिरूप तथा

साधनों की प्राप्ति हेतु नीति निर्धारित करती हैं, उपराज्यीय योजनाएं क्षेत्रीय विकास, राष्ट्रीय नीति तथा लक्ष्य को ध्यान में रखकर बनती हैं। लघु योजनाएं लोगों की आवश्यकताओं और छोटे क्षेत्रों के भविष्य को समाहित करती हैं। विकेंद्रीकरण योजना को विभिन्न स्तरों पर या बहुस्तरीय योजना के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय, प्रांतीय, जिला, प्रखंड, पंचायत और क्षेत्रीय स्तर के लिए योजनाएं हो सकती हैं।

विकेंद्रीकृत योजना के सिद्धांत को समझने के लिए यह समझना आवश्यक है कि हमें विकेंद्रीकृत योजना की प्रक्रिया क्यों चाहिए, खासकर भारत जैसे देश में। इसका एक उत्तर यह हो सकता है कि विकेंद्रीकृत योजना की आवश्यकता, केंद्रीकृत योजना तथा निर्णय करने की खामियों को दूर करने के लिए है। केंद्रीकृत योजना सभी क्षेत्रों तथा विभिन्न स्तरों की आवश्यकताओं को पूरी नहीं कर सकती। इसलिए योजना को उस स्तर के निकट ले जाना होगा, जहां तथ्यों पर नीति का निर्माण हो सके।

योजना प्रक्रिया पूर्णत: नौकरशाही ढंग से सफल नहीं हो सकती। इसके लिए सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता है। अगर हम योजनाओं को साकार और लागू करना चाहते हैं, तो भागीदारी बढ़ानी होगी। भागीदारी तभी हो सकती है, जब योजना नीचे स्तर से और नीचे स्तर के लिए बनाई जाए। आम जनता की भागीदारी प्रभावकारी ढंग से बढ़ाने के लिए विकेंद्रीकरण की आवश्यकता है। खासकर भारत जैसे विकासशील देश में जहां विकास में क्षेत्रीय असमानता तथा सामाजिक संरचना में विषमता, गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या एक क्षेत्र विशेष तथा समूह विशेष की हो, वहां समाधान के लिए विकेंद्रीकृत उपागम की मांग है।

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि विकेंद्रीकरण योजना के अंतर्गत प्रक्रिया द्वारा क्षेत्र विशेष तथा स्थान विशेष की समस्याओं का निवारण तथा वहां के संसाधनों का सही ढंग से नियोजन किया जाता है। विकेंद्रीकृत प्रणाली वर्तमान समय में केंद्रीकृत प्रणाली की क्रिया विधि की प्रतिक्रिया स्वरूप आई है। इसके निम्नांकित बिंदु हैं:

- योजना आयोग राष्ट्रीय योजना को सैद्धांतिक तथा लक्ष्य के अनुरूप तय करता है और राज्यों की योजना के लिए लागत-निर्धारण भी करता है।
- केंद्र स्तर पर सार्वजनिक तथा प्राइवेट लागत-व्यय का निर्धारण देश के विकास के लक्ष्य को ध्यान में रखकर करता है।
- स्तर, प्राथमिकता, लागत और केंद्र तथा राज्यों की योजनाओं में किस प्रकार विचार-विमर्श हो अथवा वित्तीय तथा उसके निरूपण में किस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाए, इसका निर्णय भी लेता है।
- राज्य की योजना को योजना आयोग द्वारा अनुमोदन।
- केंद्र के माध्यम से चलाई जाने वाली योजना को राज्य दल के वर्किंग ग्रुप की मीटिंग के बिना लागू करना।

उपर्युक्त विचार विकेंद्रीकृत नियोजन के लिए एक सैद्धांतिक पक्ष प्रदान करते हैं। विकेंद्रीकरण योजना प्रक्रिया के लिए कुछ पूर्व निर्धारित शर्तें हैं, जो उसकी सफलता के लिए आवश्यक हैं। इस परिप्रेक्ष्य में इन बिंदुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है :

- कुछ शक्ति तथा कार्य अधो-राष्ट्रीय स्तर पर दे देने से वह सब कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता, जिसकी आवश्यकता है।
- योजना की प्रक्रिया में अकृत्रिम लोकप्रिय सहभागिता आवश्यक है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक स्तर पर लोगों को दायित्व देना तथा किसी भी प्रकार का बड़ा परिवर्तन समाज में लाने के लिए उनकी भागीदारी जरूरी है।
- सभी एजेंसियों के दायित्व तथा भूमिका परिभाषित होनी चाहिए आवृत्ति को रोकना चाहिए। यह निश्चित होना आवश्यक है कि विभिन्न स्तरों पर क्या कार्य करने हैं तथा कार्य किस प्रकार योजन आयोग से संबद्ध हों।

विकेंद्रीकृत योजना के सैद्धांतिक ढांचे से स्पष्ट होता है कि लघु स्तरीय योजना (जिला नियोजन) की सबसे उत्तम कड़ी विकेंद्रीकृत योजना ही है क्योंकि प्रशासन के दृष्टिकोण से यह सर्वोत्तम नियोजन का एक साधन भी है, जो वितरण के साधन को मजबूत बनाता है और राज्य तथा राष्ट्र के विकास में कड़ी का काम करता है।

विकेंद्रीकृत योजना के उद्देश्य के आधार पर जिला योजना के तीन महत्वपूर्ण संघटक हैं। ये हैं—विकास, समदृष्टि और अच्छा जीवन। विकास दर पर आधारित योजना एक क्षेत्र विशेष का उपागम है। समदृष्टि पर आधारित योजना एक लक्ष्य समूह का उपागम है जिसमें समाज के कमजोर वर्ग का निर्धारण किया जाता है तथा उनके लिए आय तथा रोजगार मुहैया कराया जाता है, उन्हें उत्पादन के लिए साधन उपलब्ध कराए जाते हैं तथा उन्हें हुनर भी सिखाया जाता है। तीसरा संघटक जो सामाजिक सुख-सुविधाएं तथा अत्यावश्यक आवश्यकताओं से संबंधित है, उसमें लोगों के जीवन स्तर को सुधारना शामिल है। यह सामुदायिक आधारित योजना है। इन तीनों संघटकों में भौगोलिक, सामाजिक तथा आर्थिक, स्थान विशेष योजना ढांचा समन्वित ग्रामीण-शहरी विकास योजना की तरफ ले जाता है तथा जिला योजना का ढांचा प्रदान करता है।

विकेंद्रीकृत योजना के उपागम

विकेंद्रीकृत योजना के उपागम अभी तक नवजात अवस्था में हैं। इसके मार्ग में अनेक सैद्धांतिक तथा प्रणालीगत समस्याएं हैं जिसका अभी तक समाधान नहीं हो सका है। यह एक बहुउद्देश्यीय सतत प्रक्रिया है।

लाल बहादुर राष्ट्रीय प्रशासनिक संस्थान में जून 1990 में विशेषज्ञ की एक सभा विकेंद्रीकृत योजना के उपागम के लिए बुलाई गई। डा. डी.एम. नंजूनडापा ने इस संगोष्ठी में अनेक समस्याओं की चर्चा की जो अभी तक अनुत्तरित हैं और राष्ट्रीय तथा राज्यीय प्राथमिक योजनाओं को जिले के नीचे प्रखंड तथा मंडल स्तर पर ले जाकर क्षेत्रीय असमानताओं

को दूर करती हैं। इस संस्थान ने यह अनुमोदित किया कि 'स्थानीय खंड' जिला स्तर के नीचे जहां स्कीम, प्रोजेक्ट बनाया जाए तथा उसको सफलतापूर्वक लागू किया जाए। ग्रुप ने यह अनुभव किया कि यह बहुत कठिन कार्य है जो विकेंद्रीकृत योजना के तहत होता है और स्कीम को अनुकूल योजनाओं में एकीकृत करता है।

भारत में विकेंद्रीकृत योजना

भारत में विकेंद्रीकृत योजना कोई नई बात नहीं है। इसका प्रारंभ 1951 में हो गया था परंतु यह क्षेत्रीय कार्यक्रम निम्न स्तर के प्रशासकीय स्तर तक सिमट कर रह गया। फिर भी योजना राष्ट्रीय और राज्यकीय स्तर पर अच्छी तरह से व्यवस्थित और स्थापित है। यह योजना सूक्ष्म स्तर पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम के लागू होने से शुरू हुई जिसके लिए विस्तृत विकेंद्रीकृत विकास प्रशासन का तंत्र पूरे भारत को 5,000 से ज्यादा प्रखंडों में बांटकर बनाया गया। यह भी सोचा गया कि विकास की ये इकाइयां गांवों की योजना बनाएंगी। उन्हें प्रखंड के विकास के साथ जोड़ा जाएगा जो प्रखंड के लिए प्रखंड स्तर पर योजना तैयार करेंगी। यह सत्य है कि इन योजनाओं का केवल अंश मात्र कुछ गांवों के क्रियाकलापों तक सीमित था, फिर भी यह प्रयोग सराहनीय था। यह प्रक्रिया ज्यादा समय तक नहीं चल सकी और सामुदायिक विकास योजना 60 के दशक के अंत तक लगभग समाप्त हो गई।

इस दिशा में दूसरा प्रयास तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66) तथा तीन वार्षिक योजनाएं (1966-67, 1967-68 और 1968-69) में किया गया। वास्तव में यहां से विकेंद्रीकृत योजना के विचार ने स्वरूप लेना प्रारंभ कर दिया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत में राज्य, जिला तथा उससे नीचे स्तर के प्रखंड पर सामुदायिक विकास योजना को लागू करने के लिए, सांख्यिकीय सूचनाओं से सज्जित किया गया तथा योजना प्रक्रिया में भागीदारी होने पर बल दिया गया। राज्य सरकारों के सामर्थ्य को अनुभव कर योजना आयोग ने योजना तैयार करने की प्रक्रिया में राज्यों की भागीदारी प्रारंभ कर दी। राज्यों को कहा गया कि वे विकास की गति, दिशा, प्राथमिकता और साधनों की स्थिति को उपलब्ध कराने तथा विकसित-अविकसित क्षेत्रों के बीच भेद को कम करने के तौर-तरीके आदि के बारे में तथ्य संग्रहित करें और वे उन योजनाओं को अपनाएं जो उनके भौगोलिक, जलवायु तथा रीति-रिवाज के अनुकूल हों। परिणामत: केंद सरकार ने, तृतीय पंचवर्षीय योजना से प्रखंड को दिए जाने वाले अनुदान की प्रक्रिया को बदल दिया।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का काल विकेंद्रीकृत योजना के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम था। इस अवधि में विकेंद्रीकृत योजना का स्वरूप उत्कर्ष पर आ गया। जब चतुर्थ योजना का बनना प्रारंभ हुआ, तब सरकार का ध्यान एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति तथा एक क्षेत्र का दूसरे क्षेत्र के साथ संबंध, कृषि में नई तकनीकों का उपयोग बढ़ाने आदि की तरफ गया। यह तथ्य उभर कर सामने आया कि राज्य आर्थिक अभाव के कारण अपने योजना तंत्र को मजबूत नहीं कर पा रहे हैं। इस कारण कुछ प्रमुख योजना प्रक्रियाओं तथा योजना के सिद्धांतों में परिवर्तन लाए गए। ये परिवर्तन इन क्षेत्रों से संबंधित थे—(1) योजना धन के हस्तांतरण में पिछड़े राज्यों पर ज्यादा ध्यान देना और (2) राज्य-स्तर पर योजना तंत्र को मजबूत करने का सूत्रपात करना, जिससे कि राज्य जिम्मेदारी से भाग ले सकें।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में जिला योजना पर बल दिया गया तथा उसके लिए विस्तृत दिशा-निर्देश भी दिए गए। साथ ही योजना आयोग ने 20 पायलट प्रोजेक्ट, 18 राज्यों में और क्षेत्रीय विकास योजना के लिए 'ग्रोथ सेंटर' की स्थापना की जो विभिन्न भौगोलिक परिवेश तथा सामाजिक-आर्थिक दशा के अनुरूप काम करेंगे। परंतु यह प्रयास भी जिला योजना प्रक्रिया को स्थापित करने में सफल नहीं हो सका।

पांचवीं से आठवीं पंचवर्षीय योजना तक के सभी प्रयासों ने विकेंद्रीकृत योजना के क्षेत्र में अपनी जड़ें जमाईं। इस समय तक यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई कि विकेंद्रीकृत योजना के लिए एकाकी प्रयास काफी नहीं है। इसे सफल बनाने के लिए इसके संगठनात्मक ढांचे को मजबूत बनाना होगा। विकेंद्रीकृत योजना के लिए क्षमता को सतत बनाए रखना होगा, सही प्रक्रिया तथा उपयुक्त संरचना और आवश्यक प्रशासनिक एवं तकनीकी परिवर्तन करने होंगे। इस क्रिया के संबंधित मुख्य बिंदु ये हैं:

- केंद्रीय सहायता से योजना प्रक्रिया के तंत्र को समुचित स्तर पर मजबूत करने के लिए केंद्रीय सहायता को विस्तृत करना।
- जिले को विकेंद्रीकृत योजना की क्रियात्मक इकाई रखा जाए जिससे इसके लिए एक आम सहमति उभरे।
- उपर्युक्त बजट बनाने तथा पुन: विनियोग के तरीके स्थापित किए जाएं।
- योजना बनाने तथा उसके क्रियान्वयन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत करना।

इसलिए नौवीं पंचवर्षीय योजना में विकेंद्रीकृत योजना पर विशेष बल दिया गया। योजना के प्रपत्र में यह दर्शाया गया कि सरकार पंचायतों को सशक्त बनाए जिससे वह एक स्वशासी संस्था के रूप में संविधान के अंतर्गत अपनी भूमिका निभा सके। पंचायत को योजना, सामाजिक न्याय तथा विकास के क्षेत्र में कार्य करने के लिए वित्तीय, मानवीय तथा प्रशासनिक सहयोग दिया जाए। नौवीं पंचवर्षीय योजना में पंचायतों को अपने संसाधन स्वयं जुटाने की प्राथमिकता देनी होगी। नौवीं पंचवर्षीय योजना में 29 विषयों को पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित करने का प्रस्ताव है। यह भी प्रस्तावित है कि राष्ट्रीय विकास परिषद (एन.डी.सी.) के सुझाव लागू हों, जिनके अंतर्गत 41 फीसदी संसाधन विकेंद्रीकृत योजना के लिए होंगे।

(शेष पृष्ठ 26 पर)

ग्रामीण जनता के लिए पीने के स्वच्छ सुरक्षित जल की व्यवस्था

एक समयबद्ध कार्य-योजना

अभाव वाले इलाकों में जहां गरीब लोग सदियों से कष्ट उठाते रहे हैं, वहां पीने के स्वच्छ सुरक्षित जल की व्यवस्था होना उनके लिए सबसे मूल्यवान वरदान है जिससे गांवों की जनता का स्वास्थ्य भी सुधरेगा और समृद्धि भी आएगी।

केन्द्रीय सरकार का यह दृढ़ संकल्प है कि सभी आवासीय बस्तियों में पीने के साफ जल की व्यवस्था एक समयबद्ध कार्यक्रम के रूप में की जाएगी। ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय ने राज्य सरकारों तथा पंचायती राज संस्थाओं के सक्रिय सहयोग और भागीदारी से ग्रामीण जल आपूर्ति की स्कीमें बनाई है ताकि सन 2000 तक जनता को यह बुनियादी सुविधा मिल सके।

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी

davp 96/449

राजस्थान की पंचायती राज संस्थाओं के संदर्भ में राज्य वित्त आयोग की भूमिका

अमरेन्द्र कुमार तिवारी *

ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका प्रारंभ से ही महत्वपूर्ण रही है। पंचायती राज की स्थापना भारतीय लोकतंत्र की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और पंचायती राज दोनों एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। ग्रामीण विकास और पंचायती राज का वर्तमान स्वरूप सर्वप्रथम 2 अक्तूबर 1952 को भारत सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम के रूप में प्रारंभ किया गया।[1] इसमें जन-साधारण की सहभागिता नहीं थी। इसके अंतर्गत स्थानीय निकायों के लिए सरकार द्वारा विकास खंडों को अनुदान राशि दी जाती थी। यह कार्यक्रम पूर्णरूपेण सफल नहीं हो पाया।

भारत के संविधान की धारा 40 में राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में पंचायती राज की धारणा को स्पष्टत: निम्नरूपेण व्यक्त किया गया :

''राज्य ग्राम पंचायतों की स्थापना के लिए आवश्यक कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हों।''[2]

ये तत्व थोड़े होते हुए भी गंभीर अर्थों से भरे पड़े हैं। देश की प्रगति में तेजी लाने के लिए आवश्यक है कि हमारा ग्रामीण समाज अपने ही हाथों से अपनी विकास योजनाओं को बनाने में महत्वपूर्ण भाग ले, अपने लिए चिन्तन, आयोजन तथा संगठन करे तभी देश के विकास में उसकी अहम् भागीदारी होगी।

इसी आशा एवं निष्ठा के साथ भारत के प्रथम प्रधानमंत्री स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 2 अक्तूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में सर्वप्रथम पंचायती राज का उद्घाटन किया। राजस्थान सरकार ने नागौर को पंचायती राज योजना के सूत्रपात के लिए चयन किया।[3] 1960 में पंचायतों के प्रथम चुनाव हुए। 1960 से लेकर 1994 तक पंचायती राज संस्थाओं ने विकास-क्रम में कई उतार-चढ़ाव देखे। पंचायती राज संस्थाओं को अधिक शक्तियां प्रदान करना उस समय और भी अधिक आवश्यक हो गया, जब भारत सरकार ने केन्द्रीय योजनाओं एवं केन्द्र प्रायोजित योजनाओं के अंतर्गत व्यापक पैमाने पर ग्रामीण विकास के कार्यक्रम लागू किए। ''इसके आधार पर 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के अंतर्गत सभी राज्य सरकारों के लिए पंचायती राज संस्थाओं को अधिक सक्षम और समर्थ बनाने हेतु पंचायतों को अधिकार और निधियां प्रदान करना अनिवार्य कर दिया गया।''[4] राज्य वित्त आयोग का गठन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। ''संविधान के 73वें संशोधन के उपरांत नव राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 लागू कर राज्य के पंचायती राज को एक नया स्वरूप प्रदान करने की दिशा में पहल की गई।''[5] राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 की अनेक विशेषताओं के रूप में ग्रामीण अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग के साथ-साथ बड़ी संख्या में महिलाओं के लिए आरक्षण और राज्य वित्त आयोग के गठन से संबंधित एक नये अध्याय का सूत्रपात किया गया। इस नये अधिनियम 1994 के अंतर्गत नये पंचायती राज नियम, 1996 तैयार किए गए, जिनके द्वारा पंचायती राज संस्थाओं में बेहतर तालमेल हो सकेगा।

राजस्थान में प्रथम राज्य वित्त आयोग

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में अधिकारों का विकेन्द्रीकरण होना आवश्यक है। इसी सिद्धांत के अनुरूप 73वें संशोधन अधिनियम में पंचायती राज संस्थाओं के कार्यक्षेत्र और अधिकारों को सुस्पष्ट किया गया है और साथ ही उनके वित्तीय संसाधन बढ़ाने और वित्तीय व्यवस्था सुदृढ़ करने की दृष्टि से प्रत्येक राज्य में हर पांचवें वर्ष एक वित्त आयोग नियुक्त करने का प्रावधान है।

*शोध छात्र, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

संशोधन अधिनियम में अनुच्छेद 280 (b) के बाद उपखंड 280 (bb)जोड़ा गया है। अनुच्छेद 280 (bb) के अनुसार ''संघीय वित्त आयोग राष्ट्रपति को पंचायतों के लिए राज्य के संघटित वित्त से राज्य वित्त आयोग की अनुशंसा के आधार पर निधि उपलब्ध कराने के लिए अनुमोदित करेगा।'' राजस्थान राज्य में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था द्वारा जो पदाधिकारी चुने गये हैं, उन्हें राज्य के विकास कार्यों में सक्रिय रूप से भागीदार बनाने तथा पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय सुदृढ़ीकरण के लिए प्रथम राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया। संघीय वित्त आयोग की तुलना में राज्य वित्त आयोग का कार्य कहीं अधिक कठिन और पेचीदा है। ''संघीय वित्त आयोग के सामने केवल 25 राज्यों के बीच कतिपय करों के अंश एवं सहायता अनुदान के वितरण की समस्या होती है, जबकि राज्य वित्त आयोग पर राज्यों के करों, शुल्कों, फीसों आदि से प्राप्त आय से आबंटित एवं संचित कोष से उपलब्ध धनराशि को हजारों पंचायती राज संस्थाओं और नगरपालिकाओं में वितरण की जिम्मेदारी है।''[6] राजस्थान के राज्यपाल के 23 अप्रैल 1994 को जारी आदेश द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243-I और 243-Y तथा राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 की धारा 118 के अनुसरण में श्री के.के. गोयल की अध्यक्षता में प्रथम राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया। आयोग में दो अन्य सदस्य और एक सचिव नियुक्त किए गए।

राज्य वित्त आयोग के विचारार्थ विषय

राजस्थान के प्रथम राज्य वित्त आयोग ने निम्नलिखित विषयों पर विचार किया—

(क) वे सिद्धांत जिनसे निम्नलिखित शासित होंगे—

- राज्य द्वारा उद्ग्रहणीय करों, महसूलों, पथकरों, शुल्कों की उस शुद्ध आय का सभी स्तरों पर राज्य और पंचायतों के बीच वितरण, जिसे संविधान के भाग-9 के अंतर्गत उनके बीच विभाजित किया जाना चाहिए तथा ऐसी आय से संबंधित हिस्से का सभी स्तरों की पंचायतों के बीच आबंटन।
- उन करों, महसूलों (ड्यूटीज), पथकरों और फीस का अवधारण जो सभी स्तरों की पंचायतों को समानुदेशित अथवा उनके द्वारा विनियोजित किए जा सकेंगे।
- राज्य की संचित निधि में से सभी स्तरों पर पंचायतों को सहायता अनुदान।

(ख) पंचायतों की वित्तीय स्थिति सुधारने के लिए आवश्यक उपाय।

राज्य वित्त आयोग ने पंचायती राज संस्थाओं के लिए 73वें संविधान संशोधन में उसके विचारार्थ विषय के अभिप्रेत कार्य के बारे में विचार-विमर्श किया। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इन संशोधनों में संविधान के भाग-9 एवं 9(क) के अंतर्गत करों का विभाजन करने और उन्हें पंचायतों को सौंपने के लिए उपबंध बना दिए गए। इन संशोधनों ने राज्य वित्त आयोग को इनका विभाजन करने हेतु सिफारिशें करने का अधिकार दिया हालांकि संविधान में इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया है कि किन-किन करों, महसूलों, पथकरों एवं शुल्कों आदि का विभाजन किया जा सकेगा। ''इतना ही नहीं, राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 की धारा-64 में पंचायती राज संस्था निधि के अंश के रूप में प्रथम राज्य वित्त आयोग द्वारा अनुमोदित किए जाने वाले करों के हिस्से को शामिल कर विधायी इच्छा को स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया गया है।''[7]

प्रथम राजस्थान राज्य वित्त आयोग की सिफारिशें

''आयोग ने राज्य में पंचायती राज संस्थाओं के संगठन, कार्यप्रणाली, वित्तीय प्रबंधन आदि पर विचार कर अपनी विस्तृत रिपोर्ट 31 दिसम्बर 1995 को राज्यपाल को सौंप दी।''[8] आयोग की सिफारिशों को राज्य मंत्रिमंडल ने 25 फरवरी 1996 को स्वीकार कर लिया तथा 1995-96 से कार्यवाही प्रारंभ कर दी गई। आयोग ने 1995-96 से 1999-2000 तक विभिन्न रूपों में अनुदान देने की अनुशंसा की तथा सभी स्तरों की पंचायतों के आय-व्यय के अनुमान भी उपलब्ध कराए जिससे राज्य में पंचायती राज संस्थाओं को आर्थिक रूप से सुदृढ़ किया जा सके। आयोग की अनुशंसा पर पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न स्तरों पर अनुदान दिए गए।

ग्राम पंचायतों को दिए जाने वाले अनुदान

ग्राम पंचायतों के लिए निम्नलिखित अनुदानों की सिफारिश की गई है[9]—

संस्थापन अनुदान : जिन ग्राम पंचायतों में ग्राम सेवक के पद नहीं हैं, वहां 1,000 रुपये प्रतिमाह पर एक सहायक सचिव नियुक्त करने और एक चौकीदार 500 रुपये प्रतिमाह पर रखा जाए। विभाग इनके बदले पूर्णकालिक ग्राम सेवक के पद सृजित करने की कार्यवाही कर रहा है।

रख-रखाव अनुदान : ग्राम पंचायतों के क्षेत्र की सड़कों एवं भवनों आदि के रख-रखाव हेतु प्रति पंचायत 500 रुपये की राशि आबंटित की जाती है।

प्रारंभिक अनुदान (स्टार्ट अप ग्रांट) : नवगठित 1,856 ग्राम पंचायतों को प्रारंभ करने हेतु एक बार 5,000 रुपये की राशि दी जाती है।

प्रोत्साहन अनुदान : जिले की तीन ग्राम पंचायतों को जिला स्तरीय समिति द्वारा सर्वोत्कृष्ट कार्य के आधार पर प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान पर चयनित पंचायतों को क्रमश: दो लाख, एक लाख और 50 हजार की राशि प्रोत्साहन स्वरूप दी जाती है।

सामान्य अनुदान : वर्ष 1991 की जनसंख्या के आधार पर दिया जाने वाला 5 रुपये प्रति व्यक्ति अनुदान को बढ़ाकर 11 रुपये प्रति व्यक्ति कर दिया गया है। यह राशि प्रतिवर्ष 10 प्रतिशत बढ़ाने की सिफारिश की गई है। यह राशि पंचायतों को स्वच्छता (शौचालय), स्ट्रीट लाइट, मेले जैसे सामान्य प्रयोजन के कार्यों के लिए दी जाएगी।

विकास अनुदान : यह राशि पंचायतों को 1995-96 में राज्य सरकार की मद से क्षेत्रीय विकास कार्यों हेतु दी गई। वर्ष 1996-97 से यह राशि भारत सरकार के दसवें वित्त आयोग की अनुशंसा से पंचायतों में आधारभूत सुविधाओं के निर्माण कार्य हेतु दी जा रही है।

समान अनुदान (मैचिंग ग्रांट) : दसवें वित्त आयोग की अनुशंसा के आधार पर पंचायतों को दी जाने वाली राशि के मैचिंग स्वरूप आधारभूत सुविधाओं के लिए दी गई है।

भारत सरकार पंचायती राज संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाने वाली मैचिंग राशि का अनुपात घटाकर काफी कम कर देगी जिससे वे बिना तनाव के केन्द्रीय अनुदान का उपयोग करने में समर्थ हो जाएंगी। इसी उद्देश्य से स्वयं के स्तर पर पंचायतों के वित्तीय तनाव को कम करने के लिए 1996-97 से चार वर्ष की अवधि के लिए पंचायतों को मैचिंग अनुदान प्रदान करने की अनुशंसा की गई है। चार वर्ष में इस कार्य के लिए 61.30 करोड़ रुपये की राशि का प्रावधान करने की अनुशंसा की गई है। 1996-97 सें 1999-2000 तक के लिए इस राशि के विभाजन को तालिका-1 में दिखाया गया है।

तालिका-1
ग्राम पंचायतों को अतिरिक्त अंतरण
(1995-96 से 1999-2000 तक)

(रुपये करोड़ में)

मद	1995-96	1996-97	1997-98	1998-99	1999-2000	1995-2000
सामान्य अनुदान	20.85	22.93	25.22	27.77	30.55	127.32
संस्थापन अनुदान	3.31	9.93	9.93	9.93	9.93	43.03
मैचिंग अनुदान	5.42	6.39	7.99	15.95	25.55	61.30
रख-रखाव अनुदान	4.59	4.59	4.59	4.59	4.59	22.95
प्रारंभिक अनुदान (स्टार्ट अप ग्रांट)	0.93	0.00	0.00	0.00	0.00	0.93
प्रोत्साहन अनुदान	1.09	1.09	1.09	1.09	1.09	5.45
वित्तीय निगम	0.00	0.00	5.00	5.00	5.00	15.00
योग	36.19	44.93	53.82	64.33	76.71	275.98
विकास*	1.18	53.05	53.06	53.06	53.06	213.40
कुल योग	37.37	97.98	106.87	117.39	129.77	489.38

स्रोत : प्रथम राजस्थान राज्य आयोग का प्रतिवेदन

** वर्ष 1995-96 के लिए राज्य सरकार द्वारा तथा शेष 4 वर्ष के लिए दसवें वित्त आयोग की अनुशंसा पर भारत सरकार द्वारा प्रवाहित की गई राशि।*

पंचायत समितियों को दिए जाने वाले अनुदान

वर्तमान प्रणाली में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए आयोजना बनाने, उन्हें क्रियान्वित करने एवं उनका परिनिरीक्षण करने में पंचायत समितियां महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत बढ़ते हुए कोष प्रवाह एवं पंचायत समितियों में अपर्याप्त स्टाफ को ध्यान में रखते हुए इन संस्थाओं को संरचनात्मक दृष्टि से अधिक सक्षम बनाने की आवश्यकता है। पंचायत समितियों को दिए जाने वाले अनुदान निम्नलिखित हैं।[10] :

संस्थापन अनुदान : आयोग ने पंचायत समितियों में 115 कनिष्ठ अभियंता और 237 कनिष्ठ लिपिक के अतिरिक्त पदों के सृजन की सिफारिश की है। उक्त पदों के लिए अनुदान का प्रावधान संस्थापन अनुदान में रखा गया है।

रख-रखाव अनुदान : पंचायत समिति के कार्यालय भवनों एवं स्टाफ आवासों के रख-रखाव हेतु 10,000 रुपये प्रति प्रखंड की राशि दी जाती है।

सामान्य अनुदान : पंचायत समितियों को जनसंख्या के आधार पर दी जाने वाली 25 पैसे प्रति व्यक्ति की अनुदान की राशि को 1.25 रुपये कर दिया गया है। इस राशि का उपयोग पंचायत समिति कार्यालय व्यय और विविध व्यय के रूप में करेगी।

प्रोत्साहन अनुदान : संभाग स्तर की तीन पंचायत समितियों को सर्वोत्कृष्ट कार्य के आधार पर संभाग स्तर समिति द्वारा चयनित प्रथम, द्वितीय और तृतीय को क्रमशः पांच लाख, तीन लाख और दो लाख रुपये की राशि पुरस्कार-स्वरूप दी जाती है। पुरस्कार पाने वाली पंचायत समितियों को इस धनराशि का उपयोग अपने अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले विकास कार्यों के लिए करना होगा।

पंचायत समितियों को दिए जाने वाले विभिन्न अनुदानों को तालिका-2 में दिखाया गया है।

तालिका-2
पंचायत समितियों को अतिरिक्त अंतरण
(1995-96 से 1999-2000 तक)

(रुपये करोड़ में)

मद	1995-96	1996-97	1997-98	1998-99	1999-2000	1995-2000
संस्थापन अनुदान	1.13	1.24	1.37	1.50	1.65	6.89
सामान्य अनुदान	2.55	2.55	2.55	2.55	2.55	12.75
प्रोत्साहन अनुदान	0.60	0.60	0.60	0.60	0.60	3.00
रख-रखाव अनुदान	0.24	0.24	0.24	0.24	0.24	1.24
योग	4.52	4.63	4.76	4.89	5.04	23.84

स्रोत : प्रथम राजस्थान राज्य वित्त आयोग का प्रतिवेदन

जिला परिषदों को दिए जाने वाले अनुदान

आयोग ने अपनी सिफारिशें करते समय विद्यमान प्रणाली के अंतर्गत जिला परिषदों की भूमिका पर प्रमुख रूप से जिला स्तरीय पर्यवेक्षणकर्ता निकाय के रूप में विचार किया था जिनके पास ऐसी योजनाएं सीमित संख्या में हैं और जिनमें वे प्रत्यक्ष रूप में शामिल हों। यदि इस व्यवस्था में कोई परिवर्तन हुआ तो उसका प्रभाव जिला परिषदों के कोष प्रवाह पर भी

पड़ेगा। राज्य सरकार को, जब भी वह जिला परिषदों को अतिरिक्त कार्य सौंपे, तो यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उन कर्तव्यों के निर्वहन के लिए उन्हें पर्याप्त बजट और स्टाफ भी प्रदान किया जाए। वर्तमान व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए, जिला परिषदों के लिए निम्नलिखित अनुदानों की सिफारिश की गई है[11]—

रख-रखाव अनुदान : जिला परिषदों के भवनों के रख-रखाव के लिए प्रत्येक जिला परिषद को 20 हजार रुपये प्रतिवर्ष की राशि प्रदान की जाती है।

सामान्य अनुदान : प्रति प्रखंड 30 हजार रुपये प्रति वर्ष की दर से जिला परिषदों को सामान्य अनुदान दिया जाता है। यह राशि पेट्रोल आदि कार्यालय व्यय के उपयोग हेतु है।

प्रोत्साहन अनुदान : राज्य स्तर की तीन जिला परिषदों को सर्वोत्कृष्ट कार्य के आधार पर राज्य स्तरीय समिति द्वारा चयनित प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय जिला परिषदों को क्रमशः आठ लाख, पांच लाख और दो लाख रुपये की राशि पुरस्कार-स्वरूप दी जाती है।

जिला परिषदों को दिए जाने वाले विभिन्न अनुदानों को तालिका-3 में दिखाया गया है।

तालिका-3
जिला परिषदों को अतिरिक्त अंतरण
(1995-96 से 1999-2000 तक)

(रुपये करोड़ में)

मद	1995-96	1996-97	1997-98	1998-99	1999-2000	1995-2000
सामान्य अनुदान	0.710	0.710	0.710	0.710	0.710	3.550
रख-रखाव अनुदान	0.062	0.062	0.062	0.062	0.062	0.310
प्रोत्साहन अनुदान	0.150	0.150	0.150	0.150	0.150	0.750
योग	0.922	0.922	0.922	0.922	0.922	4.610

स्रोत : प्रथम राजस्थान राज्य वित्त आयोग का प्रतिवेदन

पंचायती राज संस्थाओं के लिए वित्तीय निगम

पंचायती राज संस्थाओं की विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए विपुल धन की आवश्यकता है। इन संस्थाओं की निधि उगाहने की क्षमता में भी असमानता है। कुछ संस्थाओं के पास अधिक संभावनाएं हैं तो कुछ के पास बहुत कम। पंचायती राज संस्थाओं को संसाधन जुटाने के लिए इन संभावनाओं के दोहन के लिए वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है। इनकी विभिन्न गतिविधियां जैसे— दुकानों का निर्माण, बाजारों का विकास तथा वास्तविक सम्पदा गतिविधियों के लिए वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है। वे इसके लिए किसी विस्तृत प्रक्रिया को नहीं अपनाती क्योंकि ग्राम संस्थाएं ऐसी प्रक्रिया को पूरी करने की अभ्यस्त नहीं हैं। उन्हें अपने सामर्थ्य का पूर्ण उपयोग करने के लिए तकनीकी एवं वित्तीय मार्ग-निर्देशों की आवश्यकता पड़ेगी।

अतः इन संस्थाओं की ऋण और तकनीकी आवश्यकताओं की देखभाल करने के लिए वित्तीय निगम की अनुशंसा राज्य वित्त आयोग ने की है। यह विदित है कि सरकार के अधीन गठित वित्त निगमों पर लागत कुछ समय बाद बढ़ने लगती है तथा उससे ऋण का बाह्य निर्गम कम होने लगता है। इन संभावनाओं को समाप्त करने के लिए राज्य वित्त आयोग ने अनुशंसा की है कि निदेशक, विकास एवं पंचायती राज इस निगम का पदेन निदेशक और विकास आयुक्त इसका अध्यक्ष होगा।

आयोग की यह अनुशंसा है कि 1997-98 से हर वर्ष 5 करोड़ रुपये की राशि 3 वर्ष तक निगम के गठन के लिए दी जाएगी (तालिका-1)। निगम के संसाधनों में वृद्धि सदस्यता शुल्क, अंशदान और वित्तीय संस्थाओं से ऋणों द्वारा की जा सकती है जबकि इसकी मुख्य आय पंचायती राज संस्थाओं को दिए गए ऋणों पर ब्याज से होगी। इस निगम के लिए स्टाफ की आवश्यकता की पूर्ति पंचायती राज और ग्रामीण विकास विभाग के वर्तमान स्टाफ में से की जाएगी।

राज्य सरकार ने वित्तीय निगम की स्थापना के ब्यौरे तैयार करने के लिए एक समिति का गठन किया। वित्तीय निगम ने वर्ष 1997-98 से कार्य करना प्रारंभ कर दिया है।

ग्राम पंचायतों के लिए सम-स्तर पर वितरण

राज्य में संतुलित विकास करने के लिए समानीकरण के सिद्धांत को लागू करने की आवश्यकता है। राजस्थान जैसे राज्य में इसकी परम आवश्यकता है, क्योंकि यहां कृषि, जलवायु की दशाओं और औद्योगीकरण की सीमाओं में अंतर है। यहां संसाधन की जरूरतें और उनकी क्षमता एक जिले से दूसरे जिले में भिन्न हैं। अतः विकास के लिए निधियों को साधनपूर्वक वितरित करने की आवश्यकता है। जिन विकास खंडों में डी.पी.ए.पी./टी.ए.डी. कार्यक्रम नहीं चलाए जा रहे हैं या उन्हें केन्द्र से और केन्द्र प्रवर्तित योजनाओं के लिए कम निधियां प्राप्त हो रही हैं, उन्हें वितरण पद्धति में कुछ मार्जिन के रूप में क्षति पूर्ति किए जाने की आवश्यकता है।

समानीकरण की पद्धति : ग्राम पंचायतों को सहायता देने में अधिकतम मदों के लिए प्रति व्यक्ति अनुदान दिया जाता है। दसवें वित्त आयोग की अनुशंसा के आधार पर दी गई विकास सहायता तथा राज्य वित्त आयोग द्वारा संस्तुत मैचिंग अनुदान का ग्राम पंचायतों में वितरण निम्नलिखित आधार पर किया जाएगा—

1. इस राशि का 50 प्रतिशत जिले में निर्धनता के आयतन के आधार पर।
2. 40 प्रतिशत कुल ग्रामीण जनता के आधार पर।
3. 10 प्रतिशत गैर डी.डी.पी./गैर डी.पी.ए.पी./गैर टी.ए.डी. खंडों में जनसंख्या के आधार पर।

वित्तीय प्रायोजनाएं : आय और व्यय

राज्य वित्त आयोग ने पंचायतों की सभी स्तरों की आय और व्यय का अनुमान उपलब्ध कराया है। राज्य वित्त आयोग के प्रतिवेदन में 1 अप्रैल

1998 से प्रारंभ 5 वर्ष की अवधि के लिए प्रायोजनाएं बनाई गईं। राज्य के हिस्से को अवधारित करने के सिद्धांतों और पंचायती राज संस्थाओं को अंतरित किए जाने वाले अनुपात का निर्धारण राज्य वित्त आयोग ने किया है। राज्य के अतिरिक्त संसाधन के पारस्परिक आबंटन की भी व्यवस्था की गई है। इस अतिरिक्त संसाधन के अलावा योजना और योजना मित्र मदों के अंतर्गत राज्य से निधियों के सामान्य प्रभाव को यथावत चालू रखा जाना है। पंचायती राज संस्थाओं की प्राप्तियों में उनकी स्वयं की आय भी शामिल है। राजस्व प्राप्तियों की प्रायोजना में निम्नलिखित घटक हैं :

1. स्वयं की आय।
2. अंतरण से पूर्व की पद्धति के अनुसार जिसमें ग्राम पंचायतों को पांच रुपये प्रति व्यक्ति का अनुदान भी शामिल है, विभागीय योजना/ योजना भिन्न शीर्षों के अंतर्गत राज्य से प्राप्तियां।
3. ग्रामीण विकास योजना के अंतर्गत जिला ग्रामीण अभिकरण से प्राप्तियां।
4. राज्य वित्त आयोग की अनुशंसा पर अतिरिक्त अंतरण।
5. दसवें वित्त आयोग द्वारा आबंटन।

पंचायती राज सस्थाओं की सभी स्तरों पर कुल राजस्व प्राप्तियों को तालिका-4 में दर्शाया गया है।

तालिका-4
सभी स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं की कुल राजस्व प्राप्तियां
(1995-96 से 1999-2000 तक)

(रुपये करोड़ में)

श्रेणी	1995-96	1996-97	1997-98	1998-99	1999-2000
ग्राम पंचायत	197.50	221.31	248.35	279.21	314.39
पंचायत समिति	616.23	727.95	860.43	1017.59	1204.13
जिला परिषद	10.42	11.89	13.92	16.71	20.65
योग	823.15	961.15	1122.70	1313.51	1539.17
दसवें वेतन आयोग से अनुदान	0.00	53.05	53.05	53.06	53.06
सकल योग	823.15	1014.20	1175.75	1366.57	1592.23

स्रोत : प्रथम राजस्थान राज्य वित्त आयोग का प्रतिवेदन

पंचायती राज संस्थाओं के व्यय की तुलना में राजस्व प्राप्तियां कम हैं। अत: आवश्यक है कि पंचायती राज संस्थाएं इस कोष का पूर्ण उपयोग करें तथा अपने द्वारा एकत्रित और प्राप्त की गई निधियों की सीमा तक व्यय करें। 1995-96 से चालू 5 वर्ष की अवधि के लिए व्यय की प्रायोजनाएं राजस्व प्राप्तियों में उल्लखित आंकड़ों के तुल्य हैं। राज्य वित्त आयोग ने, व्यय के तीन घटकों अर्थात स्थापना, विकास और विविध की परिकल्पना की है। विविध व्यय की परिकल्पना 1993-94 में कुल व्यय में इसके अनुपात के आधार पर की गई थी। किंतु विकास-व्यय की परिकल्पना कुल व्यय में से अन्य दो घटकों के व्यय को घटाकर की गई है। निदेशक, पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास को इन तीनों श्रेणियों के व्यय के अनुपात पर इस तरह से परिनिरीक्षण करना चाहिए कि स्थापना एवं विधि व्यय सदैव निर्धारित सीमा से कम ही हो। उपरोक्त तीनों श्रेणियों के लिए निर्धारित व्यय की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए पंचायती राज संस्थाओं का 5 वर्ष की अवधि के लिए प्रस्तावित व्यय को तालिका-5 में दर्शाया गया है।

तालिका-5
पंचायती राज संस्थाओं का पांच वर्ष की अवधि के लिए प्रस्तावित व्यय
(1995-96 से 1999-2000 तक)

(रुपये करोड़ में)

मद	1995-96	1996-97	1997-98	1998-99	1999-2000
स्थापना	64.84	77.61	84.38	91.82	100.01
विकास	733.62	854.71	1004.64	1182.28	1392.98
विविध	24.69	28.83	33.68	39.41	46.18
योग	823.15	961.15	1122.70	1313.51	1539.17
दसवें वित्त आयोग का अनुदान	0.00	53.05	53.05	53.06	53.06
कुल योग	823.15	1014.20	1175.75	1366.57	1592.23

स्रोत : प्रथम राजस्थान राज्य वित्त आयोग का प्रतिवेदन

भावी प्रायोजनाओं में अनेक कारणों को पूर्व में मानकर चला गया है। ये प्रायोजनाएं विगत में आय एवं व्यय में वृद्धि की प्रवृत्ति पर आधारित हैं। अकाल, बाढ़, राज्य या केन्द्र सरकार की नीति-निर्णयों में व्यवधान से इन प्रायोजनाओं पर भी निश्चित रूप से प्रभाव पड़ेगा। अत: कोष प्रवाह को प्रवाहित करने वाले परिवर्तनों के होने पर मार्ग-निर्देश एवं परामर्श देने के लिए पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय कार्य निष्पादन पर पूर्ण निगरानी रखने की आवश्यकता है।

पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय सुदृढ़ीकरण हेतु सुझाव

पंचायती राज जैसी संस्थाओं के लिए वित्त जीवन रक्त माना गया है, जिन्हें जनता के सामाजिक-आर्थिक विकास और स्थानीय स्वशासन का विस्तृत अधिकार दिया गया है। देश के ग्रामीण जीवन को खुशहाल बनाने के लिए तथा सौंपे गए कार्यों के निष्पादन हेतु पंचायतों को समुचित धन की आवश्यकता है। पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय सृदृढ़ीकरण के लिए निम्नलिखित सुझाव हैं :

- पंचायती राज संस्थाओं के लिए वित्त आयोग द्वारा निर्धारित प्रारूप में निदेशक, स्थानीय निधि अंकेक्षण विभाग द्वारा वित्तीय आंकड़े संकलित किए जाने चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न

स्तरों पर लागू होने वाले विभिन्न नियमों को राज्य सरकार द्वारा समेकित किया जाना चाहिए तथा उनमें लागू होने वाले सामान्य नियम बनाने चाहिए। ''कोई भी कार्य जो राज्य सरकार द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को अंतरित है, उसमें बजट एवं कार्यालय कर्मियों का अंतरण उन्हीं मापदंडों पर होना चाहिए और जो भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।''[12]

- पंचायती राज संस्थाओं के लेखा कर्मियों, भू-संरक्षण में तकनीकी कर्मी, जल के प्रबंधन, नागरिक निर्माण कार्य और कार्यालय प्रक्रियाओं के स्टाफ के प्रशिक्षण के लिए काफी संभावनाएं हैं। गैर अधिकारी वर्ग की भूमिका को ध्यान में रखते हुए इन संस्थाओं को उन्हें प्रशिक्षित करना चाहिए।
- कोषों के उपयोग, सामयिक पर्यवेक्षण और उनके अंतरण को इस तरह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि बिना व्यवधान के ग्राम पंचायत स्तर पर कोषों का उपयोग हो सके।
- पंचायती राज संस्थाओं को जिला विकास अभिकरण से ग्रामीण विकास योजनाओं के अंतर्गत कितना हिस्सा मिलना चाहिए तथा वास्तव में क्या मिल रहा है, इसकी निगरानी के लिए तंत्र होना चाहिए।
- पंचायतों को उनके क्षेत्र में स्थित राष्ट्रीय व राजकीय मार्गों पर स्थित ढाबों, होटलों, आटोमोबाइल्स सर्विस व मरम्मत की दुकानों, पेट्रोल व डीजल पम्पों पर कर लगाना चाहिए। बड़े पक्के घरों और हवेलियों पर कर लगाकर भी अतिरिक्त संसाधन प्राप्त हो सकते हैं।

राज्य सरकार जिला परिषदों के माध्यम से बारानी भूमि पर भू-राजस्व लगाने के लिए विचार कर सकती है। इस राजस्व को जिला परिषद, पंचायत समिति एवं ग्राम पंचायतों को क्रमश: 15, 25 तथा 60 प्रतिशत के अनुपात में बांटना चाहिए। वाणिज्यिक फसलों पर कर लगाकर अतिरिक्त संसाधन जुटाए जा सकते हैं। कृषि को एक उद्योग के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देकर रोजगार का तथा स्थानीय लोगों की आमदनी का बड़ा साधन बनाया जाना चाहिए। इस पर कर लगाकर पंचायतें भी अतिरिक्त धन प्राप्त कर सकती हैं।

निष्कर्ष

राज्य वित्त आयोग पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय सुदृढ़ीकरण में एक सशक्त स्तम्भ है। तृतीय स्तर की शासन व्यवस्था में राज्य वित्त आयोग का उद्‌भव एक सीमा-चिन्ह है। राज्य वित्त आयोग का आवश्यक कार्य पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय साधन और वित्तीय स्वायत्तता को यथार्थ एवं सार्थक बनाने हेतु अवसर प्रदान करना है। राजस्थान के प्रथम वित्त आयोग की अनुशंसा को कार्यरूप में परिणत करके पंचायती राज संस्थाएं अपने उद्देश्य और सार्थकता को सिद्ध कर सकती हैं—यही समय की मांग है। नवीन पंचायती राज अधिनियम के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की जो सुखद कल्पना की गई है, उसे साकार करने में राज्य वित्त आयोग की अहम् भूमिका है। पिछले 50 वर्षों के अनुभव का लाभ उठाते हुए इसके मार्ग में आने वाली बाधाओं और कठिनाइयों का ससमय आकलन कर राज्य वित्त आयोग द्वारा सभी व्यवहारिक और उपयोगी कदम उठाए जाने चाहिए। इसके लिए सबल राजनैतिक इच्छा, प्रशासनिक सहयोग, जन सहभागिता, दृढ़ निश्चय और कठोर अनुशासन का सहारा लेकर नवीन पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से गांधी जी की 'राम राज' की कल्पना को साकार किया जा सकेगा।

संदर्भ

1. एच.डी. मालवीय : विलेज पंचायत इन इंडिया, नई दिल्ली, 1956, पृष्ठ 523
2. भारतीय संविधान : अनुच्छेद 40
3. प्रद्युम्न कुमार एवं अन्य : ग्रामीण विकास (दिग्बोध की तलाश), उदयपुर, 1986, पृष्ठ 97
4. भारत सरकार : 73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1992, नई दिल्ली, 1993
5. राजस्थान सरकार : राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994, जयपुर, 1994
6. बी.एल. पानगड़िया : राज्य वित्त आयोग : पंचायती राज संस्थाएं एवं नगर पालिकाएं, राजस्थान पत्रिका, जोधपुर, 11 सितंबर 1994, पृष्ठ 3
7. राजस्थान सरकार : राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 धारा 64, जयपुर 1994
8. राजस्थान : प्रथम राजस्थान राज्य वित्त आयोग का प्रतिवेदन (वर्ष 1995-2000), जयपुर, दिसंबर 1995
9. - वही -
10. - वही -
11. - वही -
12. बी.एम. चितलंगी एवं अमरेन्द्र कुमार तिवारी : पंचायती राज इंस्टीट्यूशन्स इन राजस्थान : फाईनेन्शियल मैनेजमेंट, कुरुक्षेत्र, वोल्यूम XLVI, संख्या 7, नई दिल्ली, अप्रैल 1998

केवल कर्महीन ही ऐसे होते हैं जो भाग्य को कोसते हैं और जिनके पास शिकायतों का बाहुल्य होता है।

—जवाहरलाल नेहरू

मध्य प्रदेश की ग्रामीण शिक्षा व्यवस्था में पंचायतों की भूमिका

संदीप जोशी *

यह निर्विवाद तथ्य है कि शिक्षा मानव-जीवन का सबसे आवश्यक संस्कार और सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। शिक्षा ही वह संस्कार है जो दो व्यक्तियों के बीच युगों के अंतर को विभाजित करती है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए हमारे देश में संविधान निर्माताओं ने संविधान की धारा 45 में यह प्रावधान किया कि राज्यों का यह प्रयास रहेगा कि संविधान लागू होने के 10 वर्ष की अवधि में 14 वर्ष के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था होगी। संविधान की इस मंशा को आधार बनाकर विगत 51 वर्षों में शिक्षा के लोकव्यापीकरण हेतु अनेक प्रयास किए गए परंतु अभी तक वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करना संभव नहीं हो सका है। ग्रामीण, विशेषकर दूरस्थ क्षेत्रों में स्कूली शिक्षा की स्थिति आज भी दयनीय है।

गांवों के सर्वांगीण विकास को ग्रामीणों द्वारा सुनिश्चित करने की दृष्टि से पंचायती राज की स्थापना 2 अक्तूबर 1959 को तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने राजस्थान प्रदेश के नागौर जिले में की थी। तदुपरांत पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ और प्रभावी बनाने के उद्देश्य से समय-समय पर अनेक कदम उठाए गए परंतु कोई ठोस परिणाम न मिल सके। अंतत: 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था को एक संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इसी क्रम में 73वां संविधान संशोधन पारित होने के उपरांत मध्य प्रदेश सरकार ने 29 दिसंबर 1993 को राज्य विधान सभा में 'मध्य प्रदेश पंचायती राज विधेयक 1993' प्रस्तुत किया जो 30 दिसंबर 1993 को विधान सभा में पारित होने के बाद 25 जनवरी 1994 को मध्य प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1993 के रूप में संस्थापित किया गया और प्रदेश में ग्रामीण विकास से सम्बद्ध लगभग समस्त कार्य पंचायतों को सौंपकर सत्ता का विकेंद्रीकरण किया गया। अब प्रदेश में पंचायतों के माध्यम से ग्रामीणों को अपने क्षेत्र का विकास करने के लिए अनेक अधिकार प्राप्त हुए हैं। अधिकारों का विकेंद्रीकरण इस तरीके से किया गया है कि ग्रामीण निर्णय लेने और धन खर्च करने के साथ ही, अपने गांव की विकास योजना बनाने और उस पर अमल करने तक के कार्य कर सकते हैं।

शिक्षा व्यवस्था में पंचायतें

मध्य प्रदेश में स्कूली शिक्षा से सम्बद्ध विभिन्न अधिकार पंचायतों के तीनों स्तरों को पृथक-पृथक सौंपे गए हैं जिनमें ग्राम पंचायतों को ग्राम पंचायत के अंतर्गत स्थित समस्त विद्यालयों के प्रशासनिक नियंत्रण का अधिकार; जनपद पंचायतों को प्राथमिक, माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के निरीक्षण तथा प्राथमिक विद्यालयों के प्रबंधन एवं संचालन का अधिकार तथा जिला पंचायतों को माध्यमिक, उच्च माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के प्रबंधन एवं संचालन का अधिकार दिया गया है। इसके तहत ग्राम पंचायतें अपने क्षेत्र की समस्त शालाओं का निरीक्षण कर सकती हैं तथा साक्षरता अभियान का यथोचित प्रचार-प्रसार, प्राथमिक शालाओं हेतु भवनों का निर्माण और विस्तार, बुक बैंक स्कीम, अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम का संचालन एवं संपूर्ण साक्षरता अभियान से सम्बद्ध कार्यों को अंजाम देने का कार्य कर सकती हैं। इसी तरह जनपद पंचायतों को यह अधिकार दिए गए हैं कि वे प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना, प्रबंधन व संचालन करेंगी तथा उन विद्यालयों में सहायक शिक्षकों, शिक्षकों और व्याख्याताओं के पदों पर

*एसोसिएट फैलो, मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, महाश्वेतानगर, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

नियुक्तियां भी कर सकेंगी। जनपद पंचायतों को पाठ्य-पुस्तकों और शाला सामग्री की व्यवस्था, संग्रहण व वितरण, पांच लाख रुपये तक की लागत के माध्यमिक विद्यालयों के लिए भवनों का निर्माण, छात्रवृत्तियों के वितरण तथा पर्यवेक्षकों और अनुदेशकों की नियुक्ति संबंधी अधिकार भी दिए गए हैं। जिला पंचायतों को अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम और संपूर्ण साक्षरता अभियान के नियोजन, पर्यवेक्षण तथा मानिटरिंग के अधिकार दिए गए हैं। उन्हें अपने क्षेत्र में 10 लाख रुपये तक की लागत से उच्चतर माध्यमिक शाला भवनों के निर्माण एवं विस्तार तथा छात्रवृत्तियों के वितरण एवं बुक बैंक योजना संबंधी अधिकार दिए गए हैं।

मध्य प्रदेश सरकार ने स्कूल शिक्षा विभाग द्वारा पंचायतों को सौंपे गए अधिकारों में स्पष्ट किया गया है कि यह संस्थाएं शाला प्रबंधन के अंतर्गत—1. विद्यालय भवन की मरम्मत, साफ-सफाई और रख-रखाव, 2. विद्यालय में बैठक हेतु फर्नीचर, टाट-पट्टी आदि की व्यवस्था, 3. शाला स्टाफ की व्यवस्था, 4. खेल मैदान की व्यवस्था, 5. पर्यावरण संरक्षण, वृक्षारोपण आदि की व्यवस्था, 6. पेयजल तथा शौचालय की व्यवस्था, 7. ग्राम शिक्षा समितियों का गठन करेंगी।

तीनों स्तरों की पंचायतों को शालाओं के प्रबंधन, संचालन और निरीक्षण संबंधी सौंपे गए उक्त अधिकारों से यह स्पष्ट होता है कि उन्हें स्कूली शिक्षा स्तर पर व्यापक अधिकार प्रदान किए गए हैं और उन अधिकारों का विभाजन भी स्पष्ट तौर पर किया गया है।

गांवों में प्राथमिक शिक्षा को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से प्रत्येक गांव में 'ग्राम शिक्षा समिति' के गठन का प्रावधान भी किया गया है। ग्राम शिक्षा समिति प्राथमिक शिक्षा के साथ ही साक्षरता संबंधी गतिविधियों के सुचारू क्रियान्वयन हेतु भी उत्तरदायी बनाई गई है। ग्राम शिक्षा समिति में निम्नांकित को सम्मिलित करने का प्रावधान है :

- ग्राम पंचायत का सरपंच।
- ग्राम पंचायत का उप सरपंच।
- ग्राम पंचायत द्वारा नामित तीन पंच जिनमें एक महिला पंच होना अनिवार्य है।
- जनपद पंचायत द्वारा नामित चार सदस्य जो शिक्षा को बढ़ावा देने में रुचि रखते हों। इनमें दो महिला सदस्य और दो सदस्य अनुसूचित जनजाति के होने चाहिए।
- गांव के स्कूलों में पढ़ने वाले पांच बच्चों के अभिभावक।
- क्षेत्रीय विधायक द्वारा नामांकित गांव का एक व्यक्ति।
- गांव के औपचारिकेत्तर शिक्षा केन्द्र का वरिष्ठतम अनुदेशक।
- आंगनवाड़ी की वरिष्ठतम आंगनवाड़ी कार्यकर्ता।
- गांव के समस्त शासकीय विद्यालयों के प्राचार्य/प्रधानाध्यापक, इनमें से वरिष्ठतम व्यक्ति समिति का सचिव होगा।

ग्राम शिक्षा समिति को स्कूल, औपचारिकेत्तर केन्द्रों, आश्रम, शालाओं और छात्रावासों के निरीक्षण तथा औपचारिकेत्तर शिक्षा केन्द्रों, आंगनवाड़ियों तथा साक्षरता कार्यक्रम के प्रधानाध्यापक सहित अन्य शिक्षकों के आकस्मिक अवकाश स्वीकृत करने, शासन या अन्य स्रोतों से मिले धन में से एक बार में 1,000 रुपये तक व्यय करने की स्वीकृति प्रदान करने, शाला भवन की मरम्मत, लिपाई-पुताई, सड़क, शिक्षण सामग्री की व्यवस्था, पेशाबघर का निर्माण तथा शिक्षकों की समस्याओं के निराकरण का दायित्व भी सौंपा गया है।

73वें संविधान संशोधन के उपरांत विकास गतिविधियों में स्थानीय जनसहभागिता बढ़ाने का मुद्दा प्रमुख रूप से उभर कर आया है। अब समाज के प्रत्येक वर्ग विशेषत: आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े हुए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/महिलाएं, जो देश की कुल जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा हैं किन्तु जिनकी उक्त संविधान संशोधन के प्रावधानों के क्रियान्वयन में भागीदारी लगभग नहीं के बराबर थी, उन्हें समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। अब इस वर्ग के व्यक्तियों, जो सदियों से निर्धनता, बेकारी के कुचक्र में फंसे हुए थे, में राजनीतिक चेतना का अंकुरण हुआ है।

यह एक कटु सत्य है कि हमारे देश में कानून तो असंख्य बने हुए हैं परंतु उनके प्रावधानों का पालन किसी भी क्षेत्र में पूरी ईमानदारी के साथ शायद ही होता है। इसी तरह पंचायतों को अनेक अधिकार सौंप तो दिए गए हैं परंतु उनका क्रियान्वयन उचित तरीकों से बहुत कम क्षेत्रों में हो रहा है। विशेषत: ग्राम पंचायत स्तर पर परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत धीमी है जबकि इस स्तर पर सर्वाधिक परिवर्तन की आवश्यकता है। कारण यह है कि पंचायत के इस स्तर पर चुने गए अधिसंख्य प्रतिनिधि प्रथम बार ही चुनकर आए हैं और उनमें बड़ी संख्या में निरक्षर भी हैं। फलस्वरूप वे अपने अधिकारों-दायित्वों को ही ठीक तरह से समझ नहीं पा रहे हैं। जानकारी और वांछित नेतृत्व कौशल तथा क्षमता के अभाव में इस प्रक्रिया में मात्र मूक भागीदारी ही प्रदान कर पा रहे हैं। ऐसा इसलिए भी हो रहा है क्योंकि इस स्तर पर चुने हुए अधिकांश जनप्रतिनिधि आर्थिक रूप से भी कमजोर हैं तथा अपनी स्वयं की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि पंचायत के कार्यों के लिए पर्याप्त समय नहीं दे पाते हैं। ग्राम स्तर पर पंचायतों को सौंपे गए अनेक अधिकारों के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक न्यूनतम प्रशासनिक मशीनरी का न होना भी एक बड़ा बाधक तत्व है। यहां यह उल्लेखनीय है कि जिला एवं जनपद स्तर पर निर्वाचित जनप्रतिनिधियों की सहायता हेतु पर्याप्त संख्या में प्रशासनिक अमला उपलब्ध होता है परंतु ग्राम पंचायत स्तर पर इसका नितांत अभाव सारी व्यवस्था को एक तरह से पंगु बना देता है। यद्यपि इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि पंचायतों में कमजोर वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित करने से इनके सामाजिक-आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है जिसके लाभप्रद परिणाम आगामी कुछ वर्षों में दृष्टिगोचर होने लगेंगे।

उल्लेखनीय है कि अनेक कार्यक्रमों व प्रयासों के चलते भी हम अभी तक इस स्थिति में नहीं पहुंच पाए हैं, जहां प्रत्येक गांव में स्तरीय प्राथमिक

विद्यालय की उपलब्धता अथवा प्रत्येक बच्चे को शिक्षा प्रदान करने का संकल्प पूरा किया जा सके। प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धता गांवों के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा इसकी सुनिश्चितता और उचित व्यवस्था की दृष्टि से पंचायती राज व्यवस्था में गांव स्तर पर ग्राम शिक्षा समिति के गठन का प्रावधान किया गया है। यह अपने आप में एक अत्यंत महत्वपूर्ण कदम है परंतु इस महत्वपूर्ण पहलू को अधिसंख्य स्थानों पर नजरअंदाज कर दिया गया है अथवा मात्र औपचारिकता निर्वाह करने तक ही इसे महत्व प्रदान किया जा रहा है। ग्राम शिक्षा समितियों के यथाविधि गठन न हो पाने के पीछे अनेक कारण जिम्मेदार हैं जिनमें प्रमुख रूप से ग्रामीणों में तत्संबंधी प्रावधानों की जानकारी व जागरूकता का अभाव सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अनेक ग्राम पंचायतों में ग्रामीणों और निर्वाचित जनप्रतिनिधियों से संपर्क करने पर यह आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया है कि ऐसे अनेक सदस्य हैं जिन्हें यह भी मालूम नहीं है कि वे अपने गांव में शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु गठित ग्राम शिक्षा समिति के सदस्य हैं। कारण यह है कि अव्वल तो समिति की बैठकें होती ही नहीं और यदि कहीं औपचारिकता पूरी भी की जाती है तो रजिस्टर घुमवाकर सम्बद्ध सदस्य के हस्ताक्षर अथवा अंगूठे का निशान प्राप्त कर लिया जाता है और बैठक की कार्यवाही कागज पर ही पूरी कर ली जाती है। इस संबंध में ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों से चर्चा करने पर उन्होंने स्वीकार किया कि गांवों में शिक्षा समिति की बैठक विधि अनुसार न होने के पीछे कारण यह है कि सदस्य अनेक बार बुलाने पर भी बैठक में भाग लेने नहीं आते क्योंकि वे कम पढ़े-लिखे अथवा निरक्षर होने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में कोई ठोस सुझावों के अभाव में रुचि नहीं लेते हैं जबकि शिक्षा समिति के सदस्यों का कहना है कि उन्हें ग्राम शिक्षा समिति के गठन अथवा बैठक की सूचना नहीं दी जाती। इस खींचतान में होता यह है कि गांव में शिक्षा संबंधी गतिविधियां प्रायः ठप्प पड़ी रहती हैं और अबोध बच्चे इसके दुष्परिणाम भुगतते हैं। यहां यह प्रश्न भी विचारणीय है कि जब सदस्यों को अपनी सदस्यता संबंधी ही जानकारी नहीं है तो ग्राम शिक्षा समिति के अधिकारों और कर्तव्यों की जानकारी तथा गांव में शिक्षा के सुधार हेतु कोई उपयोगी और सार्थक कदम उठाने संबंधी बात करना दूर की बात है। ऐसी ग्राम शिक्षा समितियां जिनमें कुछ जागरूक व पढ़े-लिखे व्यक्ति सदस्य हैं, वहां अवश्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु कुछ कार्यवाही की जाती है परंतु इनमें भी मुख्य रूप से शाला भवन/अतिरिक्त कक्षों का निर्माण अथवा बच्चों के बैठने हेतु टाट-पट्टियों की व्यवस्था आदि पर ही विचार-विमर्श मुख्य रूप से केन्द्रित होकर रह जाता है।

यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों को स्कूली शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक अधिकार तो प्रदान किए गए हैं परंतु उनके क्रियान्वयन की स्थिति संतोषप्रद नहीं कही जा सकती। आवश्यकता इस बात की है कि पंचायत प्रतिनिधियों विशेषकर ग्राम पंचायत के प्रतिनिधियों को उनकी आवश्यकताओं और क्षमताओं को दृष्टिगत रखते हुए कार्यक्रमों के क्रियान्वयन व संपूर्ण कार्यप्रणाली के बारे में गहन प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। ग्राम पंचायतें ही स्थानीय शासन की वह आखिरी इकाई हैं जिन्हें सभी कार्यक्रमों का अंतिम क्रियान्वयन करना होता है और उचित प्रशिक्षण तथा जानकारी के अभाव में अच्छे से अच्छे कार्यक्रम इस स्तर पर जाकर असफल से प्रतीत होते हैं। साथ ही विभिन्न कार्यक्रमों की सफलता सुनिश्चित ग्राम पंचायत स्तर पर करने हेतु पर्याप्त प्रशासकीय मशीनरी का होना भी निहायत जरूरी है। जहां तक शिक्षा व्यवस्था का प्रश्न है, पर्याप्त संख्या में शिक्षकों का न होना भी एक बड़ी बाधा है। अनेक विद्यालयों में मात्र एक शिक्षक, कक्षा पहली से पांचवीं तक के विद्यार्थियों को पढ़ाने हेतु बाध्य हैं तथा इस शिक्षण कार्य के अतिरिक्त उन्हें अनेक गैर-शिक्षकीय कार्य भी समय-समय पर करने होते हैं। इन सबके चलते शिक्षण-कार्य बुरी तरह प्रभावित होता है जो अंततः विद्यार्थियों के अंधकारमय भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक होता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पंचायतें शिक्षा व्यवस्था को सार्थक दिशा प्रदान करने हेतु उन्हें सौंपे गए अधिकारों और जन सहभागिता के माध्यम से अपने तहत स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप प्रयास कर नवीन प्रतिमान स्थापित कर सकती हैं। इसके लिए आवश्यकता मात्र जन प्रतिनिधियों और जनसामान्य के जागरूक होने तथा यह समझने की है कि यदि गांव के बच्चे शिक्षा के संस्कार को पाने में पीछे रह जाएंगे तो विकास की आंधी को पंचायतों के माध्यम से पाने का जो स्वप्न हमारे महापुरुषों ने संजोया है, वह स्वप्न मात्र ही रह जाएगा। ❑

(पृष्ठ 2 का शेष) पाठकों के विचार

वह माता शत्रु और पिता बैरी है जिन्होंने अपने बालक को नहीं पढ़ाया। आज के संदर्भ में भी देखें तो यह उक्ति पूरी तरह चरितार्थ होती है। विशेषकर महिलाओं का शिक्षा के प्रति सजग होना, आज एक सामाजिक आवश्यकता है क्योंकि शिक्षित महिला सामाजिक विकास की सबसे कारगर कुंजी हो सकती है।

राजस्थान में महिला शिक्षा की स्थिति पर रमेश चन्द्र पारीख और मजदूरों की बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा हेतु सरस्वती चाकर के सुझाव ध्यान देने योग्य हैं। डा. उमेश चन्द्र अग्रवाल ने भी बड़े सुगम तरीके से बालिका समृद्धि योजना का परिचय कराया है।

सबसे सार्थक और उल्लेखनीय मूल्यांकन डा. राजमणि त्रिपाठी का है जिन्होंने केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित ग्रामीण राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन कार्यक्रम का मूल्यांकन उत्तर प्रदेश की एक ग्राम पंचायत में, लाभार्थियों के बीच जाकर किया। त्रिपाठी जी के लेख ने सचमुच समस्त राष्ट्र के समक्ष उन बेसहारा वृद्धों को खड़ा कर दिया है जिन्हें सरकार द्वारा निर्धारित मात्र 125 रुपये भी समय पर और पूरे नहीं मिल पाते। इस पत्र के माध्यम से, मेरा सवाल उन दलालों से है जो चंद पैसों के लिए अमानवीय कृत्य करते हैं और मानवीयता को दूषित करते हैं।

रजनीश कुमार पाण्डेय, गांधी विहार, आजादपुर (दिल्ली)

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा

भारत की स्वतंत्रता की
50वीं वर्षगांठ

davp 98/245

महिला समूह और ग्राम उत्थान

डा. इंदिरा मिश्र

अधिकतर भारतीय गांवों में ही निवास करते हैं। खेती में महिलाएं भी आवश्यक भूमिका निबाहती हैं। कृषक वर्ग की ऋण आवश्यकताएं अक्सर ग्राम-स्तरीय कृषि सहकारी समितियों से मिलने वाले ऋणों से पूरी की जाती हैं। किंतु फिर भी ग्रामीणों की बहुत-सी आवश्यकताएं अपूर्ण रह जाती हैं। महिलाएं परिवार का महत्वपूर्ण अंग, गृहिणी तथा माता होती हैं। माता पर परिवार के भरण-पोषण का काफी भार होता है। वैसे भी अक्सर परिवार रूपी गाड़ी में सभी सदस्यों का सहयोग और सामंजस्य होता है। फर्क इतना ही है कि महिला को परिवार कल्याण का सीधा और तीखा ध्यान हमेशा बना रहता है। इसके लिए वह आय-वृद्धि के साधन ढूंढती रहती हैं।

आज समाज में जहां आर्थिक कठिनाइयां बढ़ी हैं, वहीं अर्थ उपार्जन के नए-नए साधन भी पैदा हुए हैं। भारत सरकार की ओर से सरल पद्धति से महिलाओं को ऋण सुलभ कराने के लिए मार्च 1993 में राष्ट्रीय महिला कोष का गठन किया गया है। यह कोष जरूरतमंद महिलाओं को आर्थिक साधन सुलभ कराने के लिए ऐसी संस्थाओं को अपना माध्यम बनाता है जो कि इस काम को करने के असूलों को जानती-समझती हैं क्योंकि ऋण सुलभ कराने में हिसाब-किताब रखना, ब्याज की दर समझाना, निर्धन महिलाओं को बचत के लिए सक्षम बनाना और ऋण की समयानुसार वापसी का महत्व बतलाना, ये सब ऐसी जरूरी पद्धतियां हैं जिनका विकास किए बिना इस दिशा में कोई भी स्वैच्छिक संस्था सफल नहीं हो सकती। यह भी सत्य है कि एक बार ये पद्धतियां विकसित हो जाती हैं तो फिर महिलाओं के लिए एक नया मार्ग खुल जाता है। उसके आगे उनके उत्साह, परिश्रम और योजनाबद्ध तरीके से काम करने पर उनकी तरक्की निर्भर करती है। देखा यह जाता है कि इस रीति से बार-बार ऋण लेकर महिलाएं जल्दी ही अपनी दैनिक आय में पहले से कई गुना वृद्धि कर लेती हैं। जहां उनकी मासिक आय 400 रुपये होती थी, वहीं यह 1,000 या उससे अधिक तक भी पहुंच जाती है। लेकिन जरूरत इस बात की है कि सब कार्य क्रमबद्ध तरीके से किया जाए और उसके लिए अथक परिश्रम कर सकने वाली, गांवों में गरीबों के बीच काम कर सकने वाली स्वैच्छिक संस्थाएं सामने आएं।

राष्ट्रीय महिला कोष ऐसी संस्थाओं से निकट का संपर्क बनाए रखता है, जिन्होंने गरीब महिलाओं को ऋण के माध्यम से अपनी दशा सुधारने की प्रणाली में भली-भांति ढाल लिया है।

प्रारंभिक तैयारी

इस प्रक्रिया के लिए सर्वप्रथम जरूरी है कि किसी भी गांव में जाकर वहां के लोगों की सामान्य आर्थिक-सामाजिक समस्याओं का पता लगाया जाए और निर्धन वर्ग की जो महिलाएं हैं, उनसे चर्चा की जाए कि क्या वे अपनी स्थिति सुधारने के लिए समूह में संगठित होना चाहेंगी। यदि वे 'हां' कहें तो संस्था को चाहिए कि वे उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखे कि यदि वे लोग समूह बनाना चाहती हैं तो संस्था-प्रतिनिधि उनके समूह को अपनी नेता का चुनाव करने में मदद करेंगे। साथ ही वे उन्हें बचत-ऋण के मूल सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए उन्हें उनकी नियमित बचत रखना सिखलाएंगे। इस बचत में से ऋण दे सकना, ऋण का हिसाब रखना, ऋण पर ब्याज लेना तथा बचत पर ब्याज देना, दोनों के असूलों तथा जरूरी प्रक्रिया विकसित करना उन्हें सिखाएंगे। जब बचत होना प्रारंभ हो जाती है तो अतिरिक्त बचत को बैंक में समूह का खाता खोलकर रखा जा सकता है। उनके द्वारा सहमत होने पर क्रमबद्ध गति से ये कार्य हाथ में लिए जा सकते हैं।

'प्रदान' तथा 'असेफा' जैसी संस्थाओं ने महिला समूहों को 'क्लस्टर' (अथवा समूह मंडल) के रूप में और मंडलों को संघ (फेडरेशन) के रूप में गठित कर रखा है। ये मंडल अपने-अपने समूहों में कुल बचत में से लिए गए ऋणों को घटाते हुए शेष राशि से एक निधि निर्मित करते हैं। इस निधि से होती हुई अतिरिक्त बचत राशि से दूसरे समूह के उपयोग के लिए आसानी से ले जाई जा सकती है। व्यक्तिगत बचतों तथा समूहों की बचत, क्लस्टर तक उनका जाना और निधि के रूप में अन्य समूहों को उनका मिलना, 'संघ' की व्यवस्थाएं जमाना—ये सभी प्रक्रियाएं आज कंप्यूटरीकृत लेखा व्यवस्था के जरिये इन दोनों संस्थाओं ने इतनी सुगमता से विकसित की हैं कि यह किसी भी अन्य संस्था के लिए अनुकरणीय हैं। लेखिका को रामनाथपुरम् (रामेश्वरम्) जिले में यह अवलोकन करने का मौका मिला, जहां 2,500 महिलाओं के कलेजियम (संघ) ने अपना एक मील लंबा जुलूस निकाला, फिर सामान्य सभा की बैठक में भागीदारी की। इस प्रकार ग्रामीण स्वराज की धारणा का एक जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत किया। देखा यह जाता है कि शुरू-शुरू में महिलाएं अपनी तात्कालिक जरूरतों को पूरा करने के लिए ऋण लेती हैं, जैसे—बीमारी, मकान की

मरम्मत, तीज-त्यौहार आदि के लिए अथवा छुट्टियों के पश्चात स्कूल खुलने पर, बच्चों की पुस्तकों या यूनिफार्म खरीदने के लिए। किंतु इसके पश्चात धीरे-धीरे वे उत्पादक गतिविधियों के लिए अधिक ऋण लेने लगती हैं। आयवर्धक गतिविधियों में दुधारू पशुपालन सबसे अधिक लोकप्रिय गतिविधि है। कारण ढूंढना मुश्किल नहीं है। महिलाएं यह गतिविधि अपनी दूसरी गतिविधियों के साथ-साथ आराम से कर लेती हैं और फिर दूध की खपत किसी भी रूप में हो सकती है।

कोष से प्रत्येक महिला के हिसाब से संस्थाओं को 8 प्रतिशत ब्याज पर ऋण दिए जाते हैं। आगे यह राशि महिला सदस्यों को 12 प्रतिशत पर पहुंचनी चाहिए। बीच की राशि संस्था के प्रशासनिक व्यय के लिए है। यदि समूह बीच में हो तो समूह को राशि 12 प्रतिशत पर मिलनी चाहिए जिसे वह महिला सदस्य को लगभग 18 प्रतिशत तक पहुंचा दे। पहले यह राशि कम थी। पर अब, बढ़ते-बढ़ते 7,500 रुपये प्रति लाभार्थी को मध्यावधि ऋण के रूप में तथा 5,000 रुपये अल्पावधि ऋण के रूप में देने तक पहुंच गई है। मध्यावधि ऋण लगभग 3 वर्ष में तथा अल्पावधि ऋण 15 माह में कोष को, ब्याज सहित लौटाना होता है।

सीधी-सरल पद्धति

कोष को संस्था के साथ अनुबंध करना होता है। कोष संस्था से सीधे ही आवेदन प्राप्त करता है तथा संस्था को सीधे ही राशि देता है। कोष के पास आवेदन कलैक्टर अथवा राज्य सरकार के माध्यम से आने की जरूरत नहीं है। वह संस्थाओं की क्षमता स्वयं या अपनी विश्वस्त संस्थाओं के माध्यम से परखता है। जैसे-जैसे कोष की सहयोगी संस्थाओं की संख्या बढ़ रही है, वैसे-वैसे यह काम आसान होता जा रहा है।

कोष की नीतियों की सहभागिता

कोष की पद्धतियों में भी सहभागिता की धारणा का समावेश है। कोष अपनी प्रत्येक सहयोगी संस्था को अपनी सामान्य सभा का सदस्य बनाता है तथा अपनी नीतियों के निर्धारण में उनसे परामर्श करता है। उसके इस कदम से भी संस्थाओं में उसके प्रति लगाव है तथा सभी संस्थाएं बड़े उत्साह से कोष की सामान्य बैठकों में भाग लेती हैं।

संस्थाओं के लिए मापदंड

कोष की परिपाटी है कि वह उन्हीं संस्थाओं को ऋण देता है जिन्हें ऋण संचालन का 3 वर्ष का अनुभव हो और उन ऋणों का वापस अदायगी प्रतिशत 90 रहा हो।

अन्य सुविधाएं

किंतु जिन संस्थाओं के आवेदन कोष मंजूर नहीं कर पाता है, उन्हें वह प्रशिक्षित करने का प्रयास करता है ताकि वे ऋण संचालन प्रक्रिया को भली-भांति समझ लें। ऐसा वह स्वयं व्याख्यानों और पुस्तकों के जरिये भी करता है तथा नई संस्थाओं को पुरानी संस्थाओं के पास अध्ययनार्थ भेजकर भी करता है। पच्चीस समूह बनाने पर एक लाख रुपये की आर्थिक सहायता भी ब्याज-मुक्त ऋण के रूप में कोष द्वारा सुलभ कराई जाती है।

कोष की अब तक की सफलता

कोष की अब तक भूमिका काफी उल्लेखनीय रही है। सरकार से 5 वर्ष पूर्व मिली 31 करोड़ रुपये की राशि का कोष ने न केवल उपयोग किया है, बल्कि 2,80,000 महिलाओं को 300 संस्थाओं के माध्यम से लाभान्वित करने के लिए उसने 51 करोड़ रुपये अर्थात मूल से डेढ़ गुनी राशि की स्वीकृतियां जारी की हैं। इसमें से 40 करोड़ की राशि बांटी भी जा चुकी है। उसके ऋणों का वापस अदायगी का प्रतिशत 95 रहा है।

राष्ट्रीय महिला कोष को आशा है कि अनेक संस्थाएं उससे जुड़ेंगी तथा इस प्रकार ग्रामीण महिलाओं की प्रगति का एक अक्षुण्ण मार्ग बना रहेगा। ❑

सुनिश्चित रोजगार योजना के लिए

दस अरब रुपये से अधिक की राशि

केन्द्र सरकार ने इस वर्ष अप्रैल में सुनिश्चित रोजगार योजना के लिए राज्यों को 459.48 करोड़ रुपये उपलब्ध कराए हैं। राज्यों का अंशदान 114.87 करोड़ रुपये था। पहली अप्रैल 1998 को 588.61 करोड़ रुपये की राशि ऐसी थी, जो खर्च नहीं की जा सकी थी। इसे मिलाकर योजना के अंतर्गत कुल 1,162.95 करोड़ रुपये की राशि उपलब्ध थी। इसमें बिहार, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, दादरा और नगर हवेली तथा दमन व दीव केन्द्र शासित प्रदेशों में उपयोग का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक रहा।

अप्रैल 1998 के दौरान सुनिश्चित रोजगार योजना के अंतर्गत 118.96 लाख दिहाड़ी रोजगार उत्पन्न हुए। इसमें अनुसूचित जातियों का हिस्सा 32.46 प्रतिशत, अनुसूचित जनजातियों का 26.47 प्रतिशत, भूमिहीनों का 36.12 प्रतिशत और महिलाओं का 30.1 प्रतिशत था। अब तक पूरे देश में 3.69 करोड़ लोग सुनिश्चित रोजगार योजना के अंतर्गत अपना नामांकन करवा चुके हैं।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

मध्य प्रदेश के रीवा जिले में

भूमिगत जल स्तर घटने के कारण और उसके सुधार के उपाय

मनभरन प्रसाद द्विवेदी *

जल एक अमूल्य संसाधन है। इसके बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। मानव-सभ्यता के विकास का इतिहास जल से जुड़ा है। प्राचीन काल की समस्त सभ्यताएं नदी तटों पर विकसित हुईं।

पृथ्वी पर जल की आपूर्ति जलीय चक्र की क्रिया द्वारा होती है। पानी एक ऐसा तत्व है जो ठोस, तरल एवं गैसीय—तीनों अवस्थाओं में पाया जाता है। सागर जल का सबसे बड़ा स्रोत है, जहां पानी तरल पदार्थ के रूप में भरा होता है। सौर ताप के कारण समुद्र का जल वाष्पित होकर वायुमंडल में जलवाष्प के रूप में सन्निहित हो जाता है। संघनन प्रक्रियाओं के द्वारा बादल बनते हैं तथा वर्षा होती है। जब तापमान हिमांक पर पहुंचता है तो धरातल का जल हिम के रूप में तथा जलवाष्प बर्फ या ओले के रूप में धरातल पर पहुंचते हैं।

वर्षा का जल धरातल पर पहुंचते ही तीन भागों में विभक्त हो जाता है—

- नदी, नालों के रूप में प्रवाहित होकर सागर तक पहुंचता है।
- सौर उष्मा के कारण जलवाष्प के रूप में पुन: वायुमंडल में पहुंचता है।
- अवशोषित होकर पृथ्वी के अंदर पहुंचता है। इसे ही भूमिगत जल कहते हैं।

*पर्यावरण विज्ञान संस्थान, महात्मा गांधी ग्रामोदय विद्यालय, चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश

स्रोतों के अनुसार भूमिगत जल आकाशीय अथवा उल्काजात जल, सहजात जल, मेगमा जल—उपवर्गों में विभाजित किया जाता है। महत्व की दृष्टि से उल्काजात जल का विशिष्ट स्थान है। किसी स्थान या क्षेत्र में भूमिगत जल की क्षमता वर्षा जल की मात्रा, चट्टानों की संरचना, मेघता के स्वरूप, नमन, नदी-तालाब, वानस्पतिक अंश आदि तत्वों द्वारा निर्धारित होती है। वह सीमा, जहां तक वर्षपर्यंत भूमिगत जल सुलभ हो, उसे संतृप्त जल कहते हैं। मौसम एवं ऋतुओं के अनुसार अस्थायी एवं स्थायी भूमिगत जल के बदलते स्वरूप को जल-तल में परिवर्तन (उतार-चढ़ाव) कहा जाता है।

रीवा जनपद में भूमिगत जल के स्रोत

रीवा जिला को मध्य प्रदेश के उत्तर-पूर्वी अंचल में 6365 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में विस्तृत है। इस जिले में भूमिगत जल का मुख्य स्रोत वर्षा का जल है। इस क्षेत्र में औसत 115 से.मी. वार्षिक वर्षा होती है तथा औसत तापमान 30° सेल्सियस के लगभग पाया जाता है। कुल उपलब्ध वर्षा में 65 प्रतिशत से अधिक भाग नदी-नालों के रूप में प्रवाहित हो जाता है अथवा वाष्पित होकर वायुमंडल में स्थापित हो जाता है। शेष 35 प्रतिशत तालाबों, पोखरों एवं भूमिगत जल के रूप में पाया जाता है।

भूमिगत जल के तल में उतार-चढ़ाव

जिले में सुलभ भूमिगत जल के तल में ऋतुवत परिवर्तन की प्रकृति पाई जाती है। तल में परिवर्तन का कारण विभिन्न ऋतुओं में प्राप्त वर्षा की

मात्रा है। इस क्षेत्र में वर्षा, शीत और ग्रीष्म—तीन ऋतुएं होती हैं। वर्षा ऋतु में वृष्टि के कारण भूमिगत जल का तल ऊपर उठ जाता है। वर्षा ऋतु के पश्चात शुष्क मौसम प्रारंभ होने के साथ तल नीचे की ओर खिसकने लगता है। ग्रीष्म ऋतु में भूमिगत जल का तल सर्वाधिक गहराई पर पहुंच जाता है।

वर्ष भर में भूमिगत जल के तल में 3 से 7 मीटर तक उतार-चढ़ाव पाया जाता है। जिले की विभिन्न तहसीलों में विभिन्न ऋतुओं के अनुसार भूमि के जल का तल निम्नानुसार गहराई पर पाया जाता है :

सारणी-1
भूमिगत जल के तल में उतार-चढ़ाव

तहसील	ग्रीष्म ऋतु	वर्षा ऋतु	शीत ऋतु
त्योंथर	11.0	8.5	9.5
मऊगंज	13.5	10.0	11.5
हनुमना	13.5	10.0	11.5
सिरमौर	10.0	7.0	8.5
हुजूर	8.5	7.0	6.0
रायपुर कर्चुलियान	8.5	7.0	6.0
गुढ़	8.5	7.0	6.0

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि सिरमौर तहसील के भूमिगत जल के तल में सर्वाधिक उतार-चढ़ाव 5.5 मीटर तक पाया जाता है। त्योंथर तहसील में मात्र 2.5 मीटर जल के तल में परिवर्तन रिकार्ड किया गया।

दैनिक उतार-चढ़ाव की प्रकृति

भूमिगत जल के तल में केवल ऋतुवत परिवर्तन नहीं होते, बल्कि दैनिक परिवर्तन की प्रक्रिया भी दृष्टिगोचर होती है। अध्ययन क्षेत्र में निर्मित साधारण कुंओं के सर्वेक्षण में यह परिवर्तन 1.2 से 2.5 मीटर तक पाया जाता है। इस परिवर्तन के प्रमुख कारणों में जल के उपयोग तथा आपूर्ति के मध्य संबंधों का अभाव है। प्राय: वर्षा ऋतु में उपयोग की तुलना में आपूर्ति अधिक होने से तल में परिवर्तन नहीं मिलता, जबकि ग्रीष्म ऋतु में उपयोग की तुलना में आपूर्ति कम होने के कारण दैनिक तल परिवर्तन स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है।

सर्वेक्षणों से यह स्पष्ट हुआ है कि उत्तरोतर अधोभौमिक जल के संतृप्त तल में निरंतर ह्रास हुआ है। 1971 में संतृप्त की औसत गहराई 8 मीटर थी जो 1981 में 10 मीटर, 1991 में 12 मीटर तथा 1995 में 14.5 मीटर हो गई है। जिले की विभिन्न तहसीलों में औसत स्थायी तल की गहराई अलग-अलग मिलती है।

तल में ह्रास के कारण

भूमिगत जल के स्थायी तल में ह्रास के प्रमुख कारण हैं:

जल उपयोग में वृद्धि (तीव्र दोहन) : जिले में मानवीय उपयोग के लिए सुलभ सतही तथा भूमिगत जल है। दोनों प्रकार के जलों में पारस्परिक संबंध भी है। जिले की जनसंख्या द्वारा जल का उपयोग मुख्यत: पीने के लिए, घरेलू उपयोग, पशुपालन, सिंचाई, उद्योग तथा अन्य विविध उपयोग के लिए किया जाता है।

भूमिगत जल के संतृप्त तल में ह्रास के प्रमुख कारणों में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि और तकनीकी विकास का होना भी है। जनसंख्या वृद्धि के कारण जहां पीने के पानी, घरेलू उपयोग, पशुपालन में तथा खाद्यान्न उत्पादन के लिए जल की मांग बढ़ी है, वहीं नवीन तकनीक द्वारा सिंचाई के साधनों तथा उद्योग-धंधों में भूमिगत जल का अंधाधुंध दोहन प्रारंभ हुआ है। परिणामत: वर्षा द्वारा आपूर्ति की तुलना में दोहन अधिक होने से जल-स्तर में गिरावट आई है, जैसा कि सारणी-2 से स्पष्ट है :

सारणी-2
भूमिगत जल की मांग का स्वरूप (1971-1995)

वर्ष	जनसंख्या	पशु संख्या	उद्योगों की संख्या	सिंचित भूमि (हेक्टेयर में)
1971	9,77,894	7,62,165	765	32,000
1981	12,07,583	9,80,162	1,622	62,000
1991	15,54,987	11,50,091	2,064	80,000
2000 (अनुमानित)	20,18,000	13,20,000	3,381	1,20,000

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि के कारण पीने के पानी, घरेलू उपयोग और पशुपालन में 1971 आधार वर्ष की तुलना में सन् 2000 तक लगभग दुगने से अधिक पानी की आवश्यकता होगी जबकि छोटे, मध्यम एवं बड़े उद्योगों की संख्या में लगभग तिगुनी वृद्धि होने के कारण इस क्षेत्र में जल की मांग तीन गुनी अधिक होगी। 1971 के आधार वर्ष के अनुसार सन् 2000 में सिंचित भूमि में चार गुनी वृद्धि अंकित होगी। अर्थात सिंचाई के क्षेत्र में चार गुना अधिक जल का दोहन किया जा रहा है। अत: दोहन की दर अधिक होने के कारण भूमिगत जल के स्तर में गिरावट आना स्वाभाविक है।

वर्षा की मात्रा में ह्रास : मानसून को भारतीय कृषि का जुआ कहा जाता है। यहां कभी बहुत अधिक वर्षा होती है तो कभी अनावृष्टि का सामना करना पड़ता है। रीवा क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। परंतु 1971 से 1995 के वर्षा संबंधी आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि वर्षा में लगभग 10 से.मी. औसत की गिरावट आई है। वर्षा की मात्रा सीधे भूमिगत जल के तल को प्रभावित करती है। चूंकि वर्षा की मात्रा में ह्रास हुआ और दोहन में तीव्रता आई है इसलिए भूमिगत जल के स्तर में गिरावट आना स्वाभाविक है।

वानस्पतिक आवरण में ह्रास : सांख्यिकी विभाग के आंकड़ों के अनुसार 1971 में जिले के कुल क्षेत्रफल में से लगभग 27 प्रतिशत वन थे जो 1991 में घटकर लगभग 12.8 प्रतिशत रह गए। 1995 तक इनका प्रतिशत 10 के आस-पास है। वानस्पतिक आवरण भूमिगत जल के तल को दो रूपों में प्रभावित करता है—प्रथम, हरित पेटी के सहारे वर्षा ज्यादा होती है, जो भूमिगत जल की मात्रा में वृद्धि करती है। द्वितीय, पादप

समूहों की जड़े चट्टानों को पानी की दृष्टि से मेघ बनाती हैं जिसके कारण अवशोषण की दर में वृद्धि होती है। रीवा जिले में वानस्पतिक आवरण का ह्रास भूमिगत जल के तल के ह्रास का महत्वपूर्ण कारण है।

भूमिगत जल के दोहन से उत्पन्न समस्याएं

अभी तक यह मान्यता रही है कि जल कभी समाप्त न होने वाला संसाधन है, चाहे इसका जितना भी दोहन किया जाए। किंतु 1991 के पश्चात लोगों की सोच में परिवर्तन हुआ है। विचारों में परिवर्तन के कारणों में जल संकट का होना प्रमुख रहा है। वर्तमान समय में कुल संचित भूमिगत जल के संचित भंडार का मात्र 22 प्रतिशत भाग प्रयुक्त किया जा रहा है। अभी प्रयोग में किया जाने वाला 78 प्रतिशत भूमिगत जल धरातल के नीचे संचयित है। मात्र 22 प्रतिशत के प्रयोग से वर्तमान स्रोत सूखने लगे हैं। इसका कारण भूमिगत जल के स्थायी तल का नीचे खिसक जाना है। ग्रामीण अंचलों में 75 प्रतिशत से अधिक साधारण कुंएं ग्रीष्म ऋतु में सूख जाते हैं अथवा सूखने की कगार पर होते हैं। इस कारण पीने तथा घरेलू उपयोग के लिए वांछित मात्रा में पानी उपलब्ध नहीं हो पाता। कुंओं में जल की मात्रा कम होने के कारण प्रदूषण बढ़ जाता है। कुंओं को अधिक गहरा करने के लिए लोगों को अतिरिक्त आर्थिक भार का वहन करना पड़ता है।

निष्कर्षत: भूमिगत जल के छोटे-से अंश का प्रयोग बढ़ने के परिणामस्वरूप जल संकट की स्थिति समूचे रीवा जिले में व्याप्त हो गई। यदि इसका 50 प्रतिशत तक दोहन होने लगेगा तो जल संकट तथा प्रदूषण की मात्रा इतनी अधिक हो जाएगी कि इससे 75 प्रतिशत से अधिक लोग अस्वस्थ हो जाएंगे। अत: जरूरी है कि भूमिगत जल का दोहन सोच-समझकर किया जाए और उसकी भरपाई भी वांछनीय है।

भूमिगत जल के संरक्षण के उपाय

भूमिगत जल के दोहन से निरंतर गिरते हुए संतृप्त तल के स्तर तथा उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए जल संकट तथा पर्यावरणीय समस्याओं के फलस्वरूप आवश्यक हो गया है कि भूमिगत जल के संतृप्त तल के स्तर को मानक रूप में रहने के लिए एक कार्य-योजना तैयार कर, उसका क्रियान्वयन किया जाए।

भूमिगत जल सतही जल से पूर्णत: अलग नहीं है, क्योंकि भूमिगत जल के स्रोत वर्षा जल तथा सतही जल हैं। इसके साथ ही किसी भी क्षेत्र में धरातलीय संरचना को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इसलिए कुछ प्रयासों के माध्यम से यदि वैज्ञानिक प्रबंधन की कोई कार्य-योजना तैयार की जाए, तो उससे भूमिगत जल के तल में गिरावट ही नहीं रुकेगी बल्कि बढ़ते जल की मांग भी पूरी हो सकेगी तथा अधिक जल के उपयोग से पर्यावरण को कोई नुकसान भी नहीं होगा। साथ ही लोग स्वस्थ रहेंगे तथा उनका बहुमुखी विकास संभव होगा। भूमिगत जल के संवर्द्धन के लिए कुछ मुख्य सुझाव हैं :

- जिले में वर्षा ऋतु के जल को अधिकाधिक रोकने की व्यवस्था करना।
- सरकारी स्तर पर जहां स्टेप डैम और मध्यम प्रकार के बांध बनाए जाएं, वहीं सार्वजनिक स्तर पर जल संग्रहण हेतु ताल, तलैया, झील आदि बनाना आवश्यक है।
- पठारी क्षेत्र होने के कारण तालाब आदि का निर्माण भी सरल है। इनके उपयुक्त आकार और ढाल के अध्ययन से अधिक मात्रा में जल संचित किया जा सकता है। बांध, झील, तालाब में संचित जल जहां वर्षा के अतिरिक्त जल को एकत्रित करेगा, वहीं शुष्क मौसम में घरेलू पशुपालन तथा कृषि कार्यों में प्रयुक्त होगा और समीपवर्ती क्षेत्र के अधोभौमिक जल के संतृप्त तल को अधिक गहराई में जाने से रोकेगा।
- परंपरागत कृषि क्षेत्रों का निर्माण आवश्यक है अर्थात कृषि क्षेत्रों को छोटे-छोटे बंधों के रूप में विकसित किया जाए, जिसमें वर्षा ऋतु का पानी भरा रहे। ऐसे उपायों से जहां मृदा के अपरदन से बचाव होगा, वहीं भूमिगत जल की मात्रा में वृद्धि होगी।
- भूमिगत जल की मात्रा प्राकृतिक वनस्पति से भी प्रभावित होती है। वृक्षारोपण से चट्टानों को संरंध किया जा सकता है, जो वर्षा जल के अवशोषण में सहायक होगी।
- लोगों को जल के उपयोग के विषय में प्रशिक्षित किया जाए जिससे वे आवश्यकतानुसार उसका अधिकतम उपयोग करें।
- प्राइवेट सेक्टर में किसी भी कार्य के लिए निर्मित किए जाने वाले कुंओं, जिनसे भूमिगत जल का दोहन किया जा सकता है, की गहराई सरकार द्वारा निश्चित की जाए तथा उन नियमों का कड़ाई से पालन किया जाए।
- नदी-नाले अथवा झील तथा तालाब के समीप कम-से-कम 300 मीटर तक की दूरी में नलकूपों के निर्माण की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए।
- चूंकि ग्रामीण इकाइयों की व्यवस्था ग्राम पंचायत को सौंपी जा चुकी है। अत: ग्रामीणों का यह दायित्व बनता है कि वे भूमिगत जल का संरक्षण और संवर्द्धन करें अथवा ऐसे कार्यों में योगदान करें। अच्छा तो यह होगा कि प्रत्येक ग्राम पंचायत क्षेत्र में जल संचयन तथा वृक्षारोपण के लिए एक निश्चित भूमि के क्षेत्रफल को सुरक्षित करें। यह सुरक्षित क्षेत्र, गांव में उपलब्ध कुल क्षेत्र का कम-से-कम 20 प्रतिशत होना चाहिए।
- ग्रामीण अंचलों में कृषि तकनीकों, फसलों आदि में परिवर्तन करना आवश्यक है। ऐसी फसल पैदा करें, जो कम जल की मांग करती हो। अच्छा होगा यदि छोटे-छोटे जलाशयों का विकास किया जाए तथा अनाज की जगह मछली उत्पादन पर जोर डाला जाए। मछली उत्पादन से जहां खाद्य समस्या सुलझेगी, वहीं तुलनात्मक लाभ भी अधिक होगा, साथ ही भूमिगत जल के तल में गिरावट नहीं होगी। ❑

गन्ने का रस

भुवनेश्वर द्विवेदी

बचपन में कही-सुनी कुछ बातें ऐसी होती हैं जो अपने में एक छोटी-सी ही सही, कहानी लपेटे रहती हैं। श्याम के जीवन में भी कुछ ऐसा ही हुआ। एक दिन बिल्कुल तड़के ही वह अपने दोस्त मोहन के घर गया और उसे जगाकर उससे बस यही कहा कि जल्द तैयार हो जाना क्योंकि आठ बजते-बजते साईकिल से निकल पड़ना है। इतना ही कह कर वह लौट आया था। यह भी नहीं बताया कि कहां जाना है और कब तक लौट आने की उम्मीद है।

यह सब क्यों और किसलिए हुआ—इसके पीछे श्याम की मां का एक सपना था। उस दिन अभी पौ फटने भी नहीं पाई थी कि श्याम की मां ने उसे झकझोर कर जगाया। श्याम गाढ़ी नींद में था। इतना तो वह समझ ही गया कि जरूर कोई खास बात है। श्याम की मां ने पिछली रात एक सपना देखा था और वह सपना श्याम को कह सुनाया। सपने में माधो सिंह ने कहा था, ''श्याम और तुम, दोनों ने ही मेरी बिल्कुल इज्जत नहीं की। तुम्हें याद होगा, यहां से विदा लेकर जाते समय मैंने तुम्हारे सामने ही श्याम से कहा था कि एक दिन वह मेरे घर आए और दूध-दही से मिला गन्ने का रस पी जाए। तब से मैं बराबर उसकी राह देख रहा हूं। अब तो मैं मौत के किनारे पहुंच गया हूं। कौन जाने,हो सकता है श्याम को अपने घर पर गन्ने का रस पिलाने की मेरी साध मेरे साथ ही चली जाए।''

श्याम की मां माधो सिंह को जेठ की तरह मानती थी। उनके सामने कभी खुल कर कोई बात नहीं कही थी। उनके मुंह से यह उलाहना सुनकर वह तिलमिला उठी थी। उन्होंने जो बात कही, वह सच थी। श्याम को उन्होंने बुलाया। उनकी बात पूरी न करने के लिए मां ने उसे धिक्कारा और आदेश के स्वर में कहा, ''वह अभी माधो सिंह के घर के लिए रवाना हो जाए।''

श्याम के पिता बनारसी साड़ी का व्यवसाय करते थे। व्यवसाय लंबा-चौड़ा था। हजारों-लाखों का कारोबार होता था। उसमें माधो सिंह ही सामान लाने-पहुंचाने और बकाया की वसूली का काम करते थे। वह अपने काम में तो कुशल थे ही, बड़े ईमानदार भी थे और साथ ही मीठे स्वभाव के थे। उम्र में बड़े होने का तो ख्याल उन्हें था ही। इसलिए ही वह समय-समय पर श्याम के पिता को समयानुकूल उचित सलाह दिया करते थे। घर में तो उनकी इज्जत थी, श्याम के पिता भी उन्हें बड़े भाई की तरह केवल मानते ही नहीं थे, वैसा सम्मान भी देते थे।

सब कुछ ठीक चल रहा था। व्यवसाय बहुत बड़ा था। इसलिए काम का बोझ भी स्वभावत: ही बहुत अधिक था और काम के उस बोझ का असर श्याम के पिता के स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा था। कुछ दिनों से उनकी तबीयत ठीक नहीं चल रही थी। तभी उन्हें एक दिन दिल का दौरा पड़ा। ठीक तो वह हो गए, पर उनमें वह शक्ति नहीं रही कि अपना व्यवसाय सही ढंग से चला सकें। जो होना चाहिए था, वही हुआ। व्यवसाय में घाटा होने लगा। हालत यहां तक आ पहुंची कि तीन लाख के घाटे का पहाड़ उनके सिर पर आ पड़ा। कोई चारा था भी नहीं। श्याम जवान तो हो गया था, पर उसमें परिपक्वता नहीं आई थी। व्यवसाय को संभालने और चलाने का गुर वह अभी सीख ही रहा था कि एक दिन उसके पिता चल बसे। लेन-देन का हिसाब-किताब करने में काफी समय लग गया। जो कुछ बचा था, उसके सहारे श्याम ने बनारसी साड़ी से ही जुड़ी एक छोटी-सी दुकान खोल ली।

सबसे बड़ी बात यह हुई कि माधो सिंह के लायक अब कोई काम नहीं रहा। बूढ़े तो वह हो ही चले थे। श्याम और उसकी मां को अपने व्यावसायिक अनुभव के आधार पर ऊंच-नीच की बात समझा कर उन्होंने उस घर से विदा लेने की इच्छा प्रकट की। जहां उन्होंने लगभग पचपन वर्ष तक बड़ी निष्ठा से सेवा की थी और जहां उन्हें खूब आदर-सम्मान भी मिला था, वहां से विदा लेने की घड़ी आ पहुंची थी।

किसी घर से लंबे अर्से तक जुड़े रहने के बाद वहां से विदा लेना और करना, कितना कष्टकर हो सकता है यह तो उस स्थिति से गुजरे किसी व्यक्ति के महसूस करने की बात है। माधो सिंह अपने घर जाने के लिए बिल्कुल तैयार हो गए थे। श्याम ने उनके पैर छुए। उस दिन तक, जिस श्याम की मां का घूंघट माधो सिंह के सामने कभी उठा नहीं था और उनसे कुछ कहना भी होता था तो वह घूंघट की ओट से ही बड़ी दबी जबान से कहती थीं, वह अपने को संभाल न सकीं और दिल दहलाने वाले स्वर में रोते हुए उन्होंने माधो सिंह के पैरों पर अपना सिर रख दिया। रोते-रोते ही इतना जरूर कहा, ''अब इस घर की इज्जत को आप गुरुजनों के आशीर्वाद का सहारा है।'' तभी देखा, सदा गंभीर रहने वाले माधो सिंह भी फफक कर रो पड़े थे। अब वह एक क्षण भी रुके नहीं। कंधे पर पड़े गमछे से आंखें पोंछते हुए बाहर निकल गए।

हां, तो श्याम को मां की बात बिजली की तरह छू गई थी। दूसरे ही क्षण माधो सिंह की बात भूल जाने की ग्लानि उसे डसने लगी। माधो सिंह को वह बड़े बाबू कहता था और माधो सिंह ने भी उस पर अपना प्यार उड़ेलने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। माधो सिंह की लालसा पूरी न कर सकने के अपराध बोध और पश्चाताप से दबा श्याम मोहन के घर चल पड़ा था।

श्याम को माधो सिंह के गांव का नाम रामपुर याद था। और यह भी याद था कि वह बनारस से पंद्रह मील की दूरी पर है। पर वह बनारस से पूर्व में है या पश्चिम में, उत्तर में है या दक्षिण में—यह पता नहीं था। पर एक

धुंधली-सी याद उसके मन में रह-रह कर झांक जाती थी कि रामपुर बनारस के पश्चिम में है।

दोनों दोस्त लगभग आठ बजे नाश्ता-पानी कर साईकिल से निकल पड़े। महीना जून का था, यानी चढ़ती गर्मी के दिन। दोनों चलते जा रहे थे और मन बहलाने के लिए श्याम माधो सिंह से जुड़ी बातें सुनाता जा रहा था। कुछ बातें बहुत रोचक थीं। विशेषकर बुढ़वा मंगल का जो नक्शा श्याम ने खींचा था, वह बड़ा दिलचस्प था। इस तरह यात्रा आसानी से कट रही थी। बुढ़वा मंगल वाली बात श्याम को बखूबी याद थी। माधो सिंह ही उसे बुढ़वा मंगल दिखाने ले गए थे।

उन दिनों बनारस में होली के बाद बुढ़वा मंगल मनाया जाता था। बुढ़वा मंगल की शाम और रात का रूप बहुत सुंदर और मोहक होता था। बनारस उन दिनों बड़ा मनोहर और सुंदर शहर माना जाता था। बुढ़वा मंगल के दिन का क्या कहना! लगता था बनारस का सारा रस-सौंदर्य गंगा की छाती पर उतर आया है। मिठाई की सारी मशहूर दुकानें और पान के बीड़ों के लिए मशहूर दुकानें गंगा पर आ जाती थीं। बनारस पान के लिए तो मशहूर है ही, इक्के और बजड़ों के लिए भी मशहूर है। वहां के प्राय: सभी संपन्न लोगों के अपने खास इक्के और बजड़े होते थे। उस दिन का सबसे बड़ा आकर्षण होता था, बजड़ों पर संगीत और नृत्य का आयोजन। बनारस के सभी नामी गवैये और गायिकाएं इस आयोजन में भाग लेती थीं। छोटी-बड़ी नौकाओं पर सवार लोगों की कोशिशें यही रहती थी कि काशीतोरा के बजड़े तक किसी तरह से पहुंच जाएं ताकि उस पर हो रहे आयोजन का आनंद ले सकें। श्याम को आज भी याद है, उस दिन उस बड़े से बजड़े को ढेर-सी नावें घेरे हुई थीं। यों भी अच्छे कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाले बजड़े के पास तक पहुंचने के लिए दर्शकों में होड़ लगी रहती थी। कभी-कभी तो आपस में झगड़े हो जाया करते थे। कहते हैं, एक बार तो खून-खराबे तक की नौबत आ पहुंची थी। तभी से बुढ़वा मंगल बंद कर दिया गया।

इसी तरह की बातें करते रास्ता कट गया और दोपहर हो चली। बीच में जहां पानी सुलभ होता, वे रुक कर पानी पी लेते और राह चलते लोगों से रामपुर का पता भी पूछ लेते। पर रामपुर का पता नहीं चला।

दिन अब ढल रहा था। दोनों दोस्त थक गए थे, पर उनके उत्साह में कोई कमी नहीं आई थी। श्याम कुछ निराश जरूर हो चला था।

उसे देर-सवेर की चिंता नहीं थी। चिंता थी केवल इस बात की कि कहीं ऐसा न हो कि माधो सिंह के गांव का पता ही न चले। तभी रास्ते में एक बाग पड़ा जिसमें कुछ लोग बैठे विश्राम कर रहे थे। वहां प्याऊ भी था। वे दोनों रुक गए। पानी पिया। श्याम बैठे लोगों से रामपुर के बारे में पूछना न भूला। एक व्यक्ति ने कहा, "रामपुर तो नहीं, पर यहां से दो मील की दूरी पर रायपुर नाम का एक गांव है और उसमें माधो सिंह नाम का एक व्यक्ति भी है।"

डूबते को तिनके का सहारा। रायपुर और उससे जुड़े माधो सिंह का नाम सुनकर श्याम चौंका। उसे लगा, कहीं ऐसा तो नहीं कि माधो सिंह ने अपने गांव का नाम रायपुर ही बताया हो। दोनों दोस्त बड़े उत्साह और आशा के साथ बताई दिशा में रायपुर के लिए चल पड़े। रायपुर वे पहुंच गए। एक व्यक्ति ने माधो सिंह के घर का पता भी बता दिया।

माधो सिंह के दरवाजे पर दोनों ने देखा कि एक वृद्ध व्यक्ति खाट पर बैठा हुक्का पी रहा है। पर वह व्यक्ति श्याम का जाना-पहचाना नहीं था। श्याम ने सोचा, 'हो सकता है कि यह घर उसी माधो सिंह का हो और वह खेत या खलिहान चले गए हों।' इसी आशा से श्याम ने उस वृद्ध व्यक्ति से माधो सिंह के बारे में पूछा। माधो सिंह को खोजने के कारण पूछे जाने पर श्याम ने सारी बात बता दी। यह भी बता दिया कि वे सुबह से ही बनारस से निकले हुए हैं और गन्ने का रस पीने की आशा से वे माधो सिंह के घर आए हैं क्योंकि उन्होंने हमें कभी गन्ने का रस पीने के लिए बुलाया था। यह भी श्याम ने स्पष्ट कर दिया कि गन्ने का रस पीने से अधिक इच्छा उनकी माधो सिंह से मिलने की है।

श्याम की सारी बात सुनकर वह वृद्ध व्यक्ति मुस्कुराया और दोनों को बड़े प्रेम से खाट पर बिठाया। हां यह बताना वह न भूला कि माधो सिंह खेत पर गए हुए हैं, थोड़ी देर में आ जायेंगे। फिर वह वृद्ध व्यक्ति उठ कर घर के अंदर गए और वहां औरतों से कुछ कहकर बाहर आ गए। उन्होंने एक दूसरी खाट मंगवाई और उस पर बिछावन डलवा दिया। उन्होंने दोनों से कहा कि वे उस खाट पर जाकर आराम से बैठें।

थोड़ी देर में भीतर से एक लड़का दो तश्तरियों में नाश्ता और लोटा गिलास में पानी ले आया। वृद्ध ने नाश्ता करने के लिए कहा तो दोनों उनका आग्रह टाल न सके। नाश्ता किया और माधो सिंह की राह देखने लगे। उनके सामने ही एक

आदमी गन्ने का रस लाने के लिए भेज दिया गया।

संध्या हो चली थी। देर होते देख श्याम ने वृद्ध सज्जन से पूछ लिया, "क्या बात है, माधो सिंह अभी तक नहीं आए।" इस पर वृद्ध फिर मुस्कुराये। तभी श्याम और मोहन ने देखा कि घर के बाहर वाले ओसारे में कई बूढ़ी औरतें आ गई थीं और उनके पीछे कुछ युवतियां उन दोनों की ओर बड़े कुतूहल से देख रही थीं। उन सभी के चेहरों पर कुतूहल और स्नेह—दोनों भाव रह-रह कर उभर रहे थे। दोनों दोस्त समझ नहीं पा रहे थे कि महिलाएं उनकी ओर इस तरह क्यों देख रही हैं।

तभी एक आदमी बड़े-से घड़े में गन्ने का रस लेकर आ गया। फिर भीतर जाकर दो बड़े बर्तनों में दूध और दही ले आया। दोनों दोस्तों ने छक कर दूध-दही मिला गन्ने का रस पिया। थोड़ी देर और इंतजार करने के बाद दोनों उठे और कृतज्ञता के भाव से जाकर वृद्ध सज्जन के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। श्याम बोला, "अंधेरा हो चला है। हमारी तो रास्ते में ही रात हो जाएगी। माधो सिंह को बुलवा लेते तो बड़ी कृपा होती।"

वह वृद्ध सज्जन इस बार हंसे और बोले, "यह घर माधो सिंह का ही है और मेरा ही नाम माधो सिंह है। पर मैं वह माधो नहीं जो कभी बनारस में काम करते थे। तुम लोग बहुत दूर बनारस से माधो सिंह से मिलने और उनके घर पर दूध-दही मिला गन्ने का रस पीने की चाह लेकर निकले थे। रास्ते की थकान तुम दोनों के चेहरों पर छिपाये नहीं छिप रही थी। तुम लोग अपनी यात्रा असफल न समझो, यह सोचकर मैंने दूध-दही और गन्ने का रस मंगा लिया था। हो सकता है, तुम लोगों को अच्छा न लगे। पर सच तो यही है कि मैंने झूठ ही कह दिया था कि माधो सिंह खेत पर गए हैं। चलो, उस माधो सिंह से भेंट तो नहीं हुई पर उन्हीं के बहाने एक दूसरे माधो सिंह तो तुम्हें मिल गए। तुम लोगों की यात्रा असफल नहीं रही। जाओ खुश रहो।"

श्याम और मोहन यह सुनकर हतप्रभ रह गए। वे मुंह से तो कुछ नहीं बोले, पर उनका मौन बहुत कुछ बोल गया। दोनों ने आगे बढ़कर उस सज्जन के पैर छुए और साईकिल लेकर वापस चल पड़े। ❑

(पृष्ठ 7 का शेष) **विकेंद्रित योजना : एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण**

विकेंद्रीकृत योजना की मशीनरी को मजबूत बनाने के लिए ऐप्रोच पेपर में 'कोर प्लानिंग टीम' का प्रस्ताव है जिसमें विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ होंगे। वे जिले की योजनाओं को बनाने में सहयोग देंगे, ऐसा सुझाव दिया गया है। वास्तव में नौवीं पंचवर्षीय योजना में एक विस्तृत, समयबद्ध तथा प्रशिक्षण के साथ-साथ विकेंद्रीकृत शासन, योजना और उसके विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं को सरकार के विभिन्न कार्यक्रम तथा तकनीकी व्यवस्था को मजबूत बनाने में सहयोग देना और सूचनाओं की लोगों तक जानकारी उपलब्ध कराने के लिए समुचित व्यवस्था प्रदान करने की बात की गई है।

इसलिए विकेंद्रीकृत योजना प्रक्रिया का विकास भारत में धीरे-धीरे एक के बाद एक कदम उठाने जैसा हो रहा है। उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत सरकार एवं योजना आयोग ने विकेंद्रीकृत योजना तथा राज्य सरकारों को योजना प्रक्रिया में भागीदारी करने की प्रक्रिया तब प्रारंभ की जब राज्य सरकारों ने अपनी पंचवर्षीय तथा वार्षिक योजनाएं बनाना प्रारंभ किया। फिर भी राष्ट्रीय योजना, योजना आयोग तथा केंद्र सरकार की नीतियां प्राथमिकता के आधार पर सर्वश्रेष्ठ स्थान पर हैं तथा वे राज्यों को प्रभावित करती हैं। तीन ऐसे तरीके हैं जिनसे केंद्र सरकार राज्य के स्तर पर योजना प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती है। ये हैं:

- केंद्रीय संसाधनों के आबंटन, खासकर केंद्र द्वारा राज्यों की सहायता राशि के द्वारा,
- केंद्रीय निवेशों का बंटवारा राज्यों के बीच; तथा
- प्राइवेट तथा सार्वजनिक पूंजी को लाइसेंस तथा नीति निर्धारण के द्वारा समायोजन करना।

निष्कर्ष

विकेंद्रीकृत प्रणाली की प्रकृति और संरचना देश में भिन्न-भिन्न हैं क्योंकि विभिन्न प्रकार की संस्थाएं तथा प्रयोग यहां प्राप्त होते हैं और किए जाते हैं। सामाजिक दशा, राजनैतिक बाध्यता तथा संस्थागत संरचनाओं में समानता नहीं है। विकेंद्रीकृत योजना पर विविध प्रकार के दबाव हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं: राजनैतिक बनाम विकेंद्रीकृत शक्ति का अभाव, प्रशासनिक-संस्थागत आवश्यकताओं का अभाव, आर्थिक, भौगोलिक तथा सामाजिक एवं मानवीय साधनों के द्वारा उत्पन्न मार्गावरोध।

विकेंद्रीकृत योजना उतनी साधारण प्रक्रिया नहीं है, जितनी कागज पर लगती है। इसकी सफलता के लिए सामर्थ्य बनाना होगा और संरचना को विकसित करना होगा। प्रशासनिक, तकनीकी तथा राजनैतिक कार्यक्षेत्र में परिवर्तन लाना होगा। साथ ही लोगों में उत्साह एवं उमंग का दीपक जलाना होगा। अगर हम इन बातों की पूर्ति कर लें तो वह दिन दूर नहीं, जब सही अर्थों में भारत में विकेंद्रीकृत योजना प्रक्रिया के सपनों को साकार रूप में देख सकेंगे। ❑

अनूठी सरपंच :

लीलाबाई आंजना

हरि शंकर शर्मा

पेंला चार आना काम बी नी होतो थो
अबे सबी काम हमारी मर्जी सेई हुई रियो है।

''पेंला चार आना काम बी नी होतो थो अबे नयो पंचायती राज में हर तरे को काम हमारी मर्जी से हुई रिया है।'' यह बात उज्जैन जिले के गांव नलवा की सरपंच लीलाबाई आंजना ने एक चर्चा में कही। अपनी पंचायत के गांव नलवा खरेंट और फाजल पुरा में बीते चार सालों में सड़क, पुलिया, आंगनवाड़ी भवन, 6 हैंडपंप और 12 इंदिरा आवासों का निर्माण कराने वाली 48 वर्षीय लीलाबाई का उत्साह, समर्पण और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता देखते ही बनती है।

सरपंच लीलाबाई ने जहां अपने सौम्य व मृदु व्यवहार के चलते ग्रामवासियों का स्नेह और आदर पाया है, वहीं अधिकारी वर्ग में उनकी कार्य-शैली, चौकन्नापन, जिद और ईमानदारी के कारण किसी को भी उनको टालने की हिम्मत नहीं होती है। इसी जिद के चलते बीते चार सालों में पिछड़े वर्ग की लीलाबाई ने अपनी पंचायत सेमलिया व नलवा के बीच एक लाख 96 हजार रुपये की लागत से पुलिया और नलवा गांव के पहुंच मार्ग के लिए एक लाख 40 हजार रुपये के बड़े निर्माण कार्यों की स्वीकृति प्राप्त कर ली और तय समय-सीमा में उच्च गुणवत्ता के साथ इनका निर्माण भी पूर्ण कराया। नलवा पहुंच मार्ग के लिए आबंटित राशि को मितव्ययता के साथ खर्च करते हुए 20 हजार की बचत कर नलवा खरेंट पहुंच मार्ग पर 300 मीटर तक गिट्टी व मोरमीकरण कर दिया। इसी के साथ स्कूल भवन की मरम्मत पर 22 हजार रुपये, आगनवाड़ी भवन की मरम्मत पर 12 हजार रुपये की राशि खर्च की तथा खरेंट मार्ग का 65 हजार की लागत से अर्थवर्क करवाया।

एक महिला जन प्रतिनिधि होने से गांव की अन्य महिलाओं को क्या लाभ मिल सकता है, इसका जीता-जागता उदाहरण नलवा पंचायत है। लीलाबाई ने अपने कार्यकाल में अब तक कुल स्वीकृत 18 सामाजक सुरक्षा पेंशन मामलों में से 13 महिलाओं तथा इस वर्ष भेजे गए 18 प्रस्तावों में भी 16 महिलाओं के प्रस्ताव शामिल किए हैं। यह पूछने पर कि इन प्रकरणों में महिलाओं की संख्या ज्यादा क्यों है? तपाक से महिला सरपंच कहती है कि विधवा और वृद्ध महिलाओं की देखभाल ठीक से नहीं हो पाती है और उनको ही सहायता की सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

अपने अधिकारों के प्रति यह महिला सरपंच कितनी जागरूक है, यह इस एक उदाहरण से स्पष्ट होता है। सेमलिया व नलवा के बीच पुलिया निर्माण का कार्य गत वर्ष जिला पंचायत द्वारा स्वीकृत किया गया तथा इसके लिए एक लाख 96 हजार रुपये की राशि भी मंजूर की गई। पुलिया नलवा पंचायत की सीमा में ही पड़ती है। किंतु पता नहीं किन कारणों से ग्राम पंचायत असलाना को इस कार्य की क्रियान्वयन एजेंसी मुकर्रर कर दिया गया। नलवा ग्रामवासियों की जिद थी कि हमारे गांव की पुलिया हमारी सरपंच ही बनाए। बस लीलाबाई फौरन जिला पंचायत के तत्कालीन मुख्य कार्यपालक अधिकारी से मिली और अपने साथ मुआयना करने के लिए लेकर आई। अंतत: पुलिया निर्माण की एजेंसी ग्राम पंचायत नलवा को ही बनाया गया और आज मजबूती से बन रही पुलिया की गांव में सर्वत्र प्रशंसा की जा रही है। इस पुलिया के बनने से हर वर्ष बारिश के तीन माह तक कटा रहने वाला सेमलिया गांव मुख्य सड़क से जुड़ जाएगा और उनका पंद्रह किलोमीटर का चक्कर बच जाएगा।

ग्राम पंचायत नलवा में अब तक समन्वित ग्रामीण विकास योजना के तहत 16 हितग्राही लाभान्वित हुए। इसमें भी सात महिलाएं शामिल हैं। इसी तरह खरेंट गांव के दस अनुसूचित जाति के हितग्राहियों को इंदिरा

(शेष पृष्ठ 32 पर)

दड़ीबा शाल-दुशाले :

हथकरघे से आत्मनिर्भरता की डगर

ओम मिश्रा

चुरु की सात तहसीलों में से एक तहसील है सुजानगढ़। मुख्यालय से 96 कि.मी. दूर इस तहसील का एक कस्बा है बीदासर। बीदासर कस्बे के एक मौहल्ले का नाम है दड़ीबा। पहले कभी यह दड़ीबा गांव हुआ करता था लेकिन बीदासर के विस्तार के साथ दड़ीबा गांव कस्बे का वार्ड बन गया। इसी दड़ीबा की ऊनी एवं सूती शालें, दुशाले तथा चद्दरें संपूर्ण उत्तर भारत में एक वर्ग विशेष के उपभोक्ताओं (मध्यम वर्ग) में मशहूर हैं। हथकरघों पर पारंपरिक विधि से बनी यह सामग्री दड़ीबा का पर्याय बन चुकी है। शेखावटी अंचल या राजस्थान ही नहीं, बल्कि संपूर्ण उत्तर भारत के विक्रेता इन्हें खरीदकर ले जाते हैं। दड़ीबा हथकरघे से बने शाल, दुशाले तथा चद्दरें अपनी उत्कृष्ट बुनावट तथा कम मूल्य के कारण कस्बों और ग्रामीण संस्कृति में बेहद पसंद की जाती हैं। माल की बराबर मांग बनी रहने के कारण कारीगरों को बेरोजगारी का कभी सामना नहीं करना पड़ता। सर्दियों में तो स्थिति यह होती है कि यहां खोजने पर भी माल नहीं मिलता।

दड़ीबा के लगभग 300 घरों के मौहल्ले में कोई भी व्यक्ति बेरोजगार नहीं है। आठ साल के बच्चे से लेकर साठ साल के बुजुर्ग के पास भी काम की कोई कमी नहीं है। एक घंटे काम करके कोई भी कारीगर 15-20 रुपये तो सहजता से कमा लेता है। यदि कोई काम ही न करना चाहे तो उसकी दूसरी बात है। अन्यथा यहां कारीगरों की तलाश सदैव रहती है।

दड़ीबा में इस समय लगभग 700 हथकरघे क्रियाशील हैं। इनमें से अधिकतर हथकरघे प्रजापत जाति (कुम्हार) के लोगों के पास हैं। हथकरघे को यहां आम बोलचाल की भाषा में खड्डी कहा जाता है। एक खड्डी पर लगभग आठ शाल-चद्दरें प्रतिदिन बुनती हैं। इस हिसाब से लगभग पांच हजार शाल-चद्दरें यहां प्रतिदिन तैयार होते हैं। इनकी प्रति नग बिक्री कीमत 30 से 60 रुपये तक होती है। लगभग एक लाख पांच हजार रुपये का माल प्रतिदिन तैयार होता है।

दड़ीबा हथकरघा उद्योग के लिए कच्चा माल (ऊनी तथा सूती धागा) लुधियाना तथा पानीपत से आता है। थोक व्यापारी कच्चा माल इकट्ठा मंगाकर स्थानीय कारीगरों को फुटकर में बेचते हैं। तैयार माल तौल कर बेचा जाता है तथा बुनाई प्रति नग के हिसाब से अलग से दी जाती है, जो 7-15 रुपये प्रति नग के हिसाब से होती है। इस तरह एक कारीगर बुनाई के कार्य से प्रतिदिन 60 से 120 रुपये की मजदूरी कर लेता है।

बीदासर बस स्टैंड से आधा कि.मी. चलकर दड़ीबा नजर आता है। दड़ीबा में प्रवेश करने से पूर्व ही घरों में चलने वाले करघों की खटर-खट-खट की आवाजें कानों में सुनाई पड़ने लगती हैं। खड्डियों के चलने की आवाजें दड़ीबा में प्रवेश करने पर और तेज हो जाती हैं।

दड़ीबा में पहला हथकरघा लगाकर इस कार्य की नींव डालने का श्रेय सोहन लाल प्रजापत को जाता है। संवत् 2010 में उन्होंने मात्र एक करघे से यह कार्य शुरू किया था। बाद में यह संख्या 40 तक पहुंच गई। सोहन लाल ने यह काम दो वर्ष तक सूरत में रहकर सीखा था। अब उनका यह काम उनके पुत्र भागीरथ प्रसाद नारायणी देख रहे हैं। उनके पास अब 12 हथकरघे हैं। 40 वर्षीय भागीरथ बताते हैं कि "इस गांव को मेरे पिता ने आत्मनिर्भरता की डगर दिखाई थी। आज यहां के कारीगर अपने कार्य में इतने सिद्धहस्त हैं कि उन्हें काम की कमी नहीं है। यह विरोधाभास आप यहीं देखेंगे कि यहां काम ज्यादा है और मजदूर कम। खोजने पर भी मजदूर नहीं मिलते।" भागीरथ पावरलूम में विश्वास नहीं करते, "पावरलूम में विद्युत संकट आड़े आएगा। इससे हैंडलूम ही ठीक है। इससे सबको काम भी मिलता है, बेरोजगारी नहीं होती।"

37 वर्षीय नंदलाल विगत 15 वर्षों से इस व्यवसाय से सीधे जुड़े हैं। उनके निवास पर पहुंचने पर शाल-चद्दरों के निर्माण में व्यस्त कारीगर नजर आते हैं। कुछ ताना मशीन पर धागा चढ़ाते, कुछ नली भरते, कुछ खड्डियां चलाते तो कुछ तैयार माल सही करते। सभी अपने-अपने कार्य में

मशगूल। वह बताते हैं कि "माल के आफ सीज़न में न बिकने की समस्या प्रमुख है। माल के इकट्ठा होने से पूंजी रुक जाती है। आफ सीज़न में रुका माल काफी नुकसान पहुंचाता है।"

प्रयोगधर्मी हस्त शिल्पकारों ने शाल, दुशाले, चद्दरों आदि की आकृतियों में कई मौलिक तथा कलात्मक प्रयोग किए, लेकिन आम विक्रेताओं में यह माल चला नहीं। पेंट, शर्ट तथा कोट पीस भी निकाले, डबल बैड के चद्दर आदि भी बनाए परंतु फेरी वालों ने उन्हें नापसंद किया। लिहाजा यह काम आगे नहीं बढ़ सका। यद्यपि नंदलाल का इस तरह के प्रयोग में बहुत उत्साह है, लेकिन बाजार न मिलने से वह कुछ अनमने से होकर कहते हैं कि "यह काम आधुनिक क्रेताओं को बेहद पसंद आता है। आधुनिक पीढ़ी के क्रेता यहां से वही माल हंसकर खरीद ले गए जिन्हें परंपरावादी क्रेता कभी नहीं उठाते थे। इससे स्पष्ट है कि इस माल के लिए आधुनिक बाजार चाहिए जो अभी कम-से-कम नहीं है।"

दड़ीबा के शाल, दुशालों तथा चद्दरों में यूं तो पारंपरिक डिजाइन ही मुख्य रूप से चलते हैं परंतु विक्रेता-क्रेता की पसंद, मांग तथा आदेश पर डिजाइनों तथा रंगों में परिवर्तन भी किया जाता है। रंगों में लाल, नीला, हरा तथा काले रंग ही अधिक चलते हैं। डिजाइनों में चौकड़ी, धारीदार, लहरिया तथा सादा ही अधिक पसंद किए जाते हैं। रंगों तथा डिजाइनों का विविधतापूर्ण प्रयोग इन कारीगरों को करना बखूबी आता है।

36-वर्षीय रामपाल पाण्डिया विगत तीन वर्ष से इस व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। दड़ीबा के हथकरघा उद्योग के बारे में वह बताते हैं कि "एक कारीगर आठ शाल प्रतिदिन निकालता है। एक घंटे में एक शाल निकल जाता है। यह शाल सामान्यतया चार हाथ लंबा तथा सवा दो हाथ चौड़ा होता है। यह काम बारह महीनों चलता है। एक तैयार करघा चार-पांच हजार रुपये का पड़ता है। चार-पांच हजार का कच्चा माल खरीदना होता है। इसके बाद यदि तैयार माल के पैसे बराबर मिलते रहें, तो कोई असुविधा नहीं। लेकिन यदि पैसे रुक जाते हैं तो आगे कच्चा माल खरीदने में मुश्किल हो जाती है। एक बार ऐसा प्रयास किया जा रहा था कि सरकार हथकरघा तथा माल उपलब्ध कराएगी और कारीगर माल बनाकर प्रति नग के हिसाब से अपनी मजदूरी प्रतिदिन प्राप्त करेगा। लेकिन यह योजना कार्यान्वित न हो सकी। दड़ीबा हथकरघा उद्योग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहां काम की कोई कमी नहीं है। महिलाएं भी काम करती हैं तथा पुरुषों के बराबर कमाती हैं।"

दड़ीबा की शाले-दुशाले तथा चद्दरों की कलात्मकता के अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह मूल्य के अनुपात में काफी टिकाऊ तथा आरामदायक होती हैं। इसी वजह से इन्हें मध्यम तथा निम्न वर्ग के परिवारों में बेहद पसंद किया जाता है।

दड़ीबा में जहां-तहां राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा के विभिन्न भागों से माल खरीदने आए व्यापारी नजर आए, कहीं वे सौदा तय करते, तो कहीं विगत हिसाब का निपटारा करते, तो कहीं बेचने के लिए अपने साथ ले जाने वाले तैयार माल को बांधते मिले।

आज जहां आधुनिकता की होड़ में पुराना हुनर लुप्त होता जा रहा है, वहीं दड़ीबा के बुनकरों का हुनर उनके साथ है। अपनी परंपरा तथा कौशल को उन्होंने संभाल कर रखा है। पावरलूम लगाने के बारे में वह स्वप्न में भी नहीं सोचते। इस उत्कृष्ट कौशल और रचनात्मक हुनर को दड़ीबा के बुनकर केवल इसलिए पसंद नहीं करते कि इससे उनकी रोजी-रोटी जुड़ी हुई है बल्कि यह कला-कौशल उनमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी रचा-बसा है और इसके बिना वह अपने आपको अधूरा महसूस करते हैं। दड़ीबा के बुनकरों ने हथकरघे से आत्मनिर्भरता की जो डगर दिखाई है, उससे केवल बेरोजगारी ही दूर नहीं होती बल्कि हथकरघा शिल्प से जुड़े हुनर के अस्तित्व को भी संरक्षण मिला है। ❑

लघुकथा

मेड़

साबिर हुसैन

जब वह वकील मित्र से मिलने पहुंचा, वह गेहूं रखवा रहे थे।

"इकट्ठा इतना गेहूं खरीद लिया?", मैंने पूछा।

"यह तो अपने ही खेतों का है", वकील साहब ने बताया।

"आपके पास खेती तो थी नहीं।"

"अभी खरीदी है, एक किसान की मेड़ दूसरे किसान ने जोत ली थी, उसी का मुकदमा मैंने लड़ा था और जिता भी दिया। लेकिन इस मुकदमे में उस किसान पर इतना कर्ज हो गया कि उसे वह खेत बेचना पड़ा। मेरी फीस का भी काफी पैसा बाकी था, इसलिए खेत मैंने ही खरीद लिया।" वकील साहब ने बताया। ❑

भूल-सुधार

अक्तूबर 1998 अंक के दूसरे आवरण पृष्ठ पर उद्धरण में—"हरिजन सेवक, 30-7-38" के ऊपर पढ़ें : "—महात्मा गांधी"।

"स्वाधीनता जब अपने सर्वोत्तम रूप में प्रकट होती है तब उसके साथ-साथ सर्वोच्च रूप में अनुशासन और विनम्रता भी रहती है।"

— महात्मा गांधी

डीएवीपी 98/350

पंचायती राज बना वरदान

आशीष खरे

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था—गांवों में हमारी आत्मा बसती है। गांवों के विकास करने से ही संपूर्ण राष्ट्र का विकास संभव है, लेकिन यह कैसी विडंबना है कि आज भी हमारे गांवों में अनेक सामाजिक विषमताएं मौजूद हैं। एक ऐसा गांव जहां से हमारा उद्‌गम हुआ, उसी की सतत उपेक्षा होती रही है हमारे इस देश में।

भारत की जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा गांवों में रहता है। स्वतंत्रता के पश्चात निश्चय ही गांवों के विकास के लिए प्रयास किए गए। लेकिन गरीबी के दलदल में फंसे हमारे गांववासियों को इसके चंगुल से निकालने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि अधिक से अधिक लोग ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों में भाग लेकर विकास के नए आयाम को सुनिश्चित करें। आज भी हमारे गांव कम उत्पादकता, बेरोजगारी, आवास समस्या, पीने के पानी की कमी जैसी ज्वलंत समस्याओं से ग्रस्त हैं।

इन तमाम समस्याओं से निजात पाने के लिए हमारी सरकार ने नई-नई नीतियां और नए-नए कार्यक्रम बनाकर गांवों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया। शासन ने इन योजनाओं को केवल किताब में छपी योजना मात्र न रहने दिया बल्कि समाज के अंतिम पंक्ति के अंतिम व्यक्ति तक पहुंचाने का संकल्प लिया और इस संकल्प को पूरा करने की जिम्मेदारी सौंप दी पंचायतों को।

इन पंचायतों ने 'हरेक सबके लिए और सब एक के लिए' की युक्ति पर विकास योजनाओं को मूर्त्त रूप देने का प्रयास शुरू कर दिया और शीघ्र ही नतीजे भी सामने आगे लगे। अब गांवों में अनेक सुविधाएं और सेवाएं मुहैया होने लगी हैं। पंचायती राज हमारे लिए वरदान बन गया और सफलता कदम चूमने लगी है।

मध्य प्रदेश में खरगौन जिला मुख्यालय से 18 किलोमीटर दूर स्थित ग्राम इच्छापुर आज दुग्ध उत्पादन से खुशहाली की ओर अग्रसर है। इस ग्राम में दूध बेचना और खेती करना प्रमुख व्यवसाय था। यहां के ग्रामीण लोगों को एक तो अपने दूध की ठीक कीमत नहीं मिल पाती थी। पशुओं की देखभाल ठीक से न होने के कारण दूध भी कम मात्रा में मिलता था जिससे उनकी आमदनी भी कम होती थी।

पंचायती राज की स्थापना के बाद यहां एक दुग्ध समिति का गठन किया गया, जिसमें गांव के 80 ग्रामीण लोगों को शामिल किया गया। समिति के कुशल प्रबंधन और उचित देखरेख करने से प्रतिदिन दुग्ध का 800 लीटर उत्पादन किया जाने लगा, जिससे हर परिवार को पर्याप्त आमदनी होने लगी और उनके जीवन-स्तर में सुधार आने लगा।

इन्हीं लाभान्वित सदस्यों में से एक है पांचवीं कक्षा तक शिक्षित बलीराम मंडलोई जो अपने पिता और भाइयों के साथ एक एकड़ जमीन पर खेती कर प्रतिमाह कुल 600 रुपये की आमदनी पाकर जैसे-तैसे गुजर कर रहा था। पंचायत ने बलीराम को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत 8,000 रुपये की सहायता दी, इससे उसने हरियाणा की संकर नस्ल की गाय खरीदी। इस गाय से उसे 30-35 लीटर तक प्रतिदिन दूध मिलने लगा और आमदनी बढ़ने लगी। समय के साथ बलीराम ने अपना पुराना सारा कर्ज चुका दिया। बाद में एक बार फिर इसी योजना के तहत उसे पुनः 8,000 रुपये की सहायता प्रदान की गई। इससे उसने एक और गाय खरीदी तथा दो गायों से उत्पादित दूध की बिक्री से तीन और संकर गाय खरीद लीं। अब बलीराम के परिवार की वार्षिक आमदनी करीब एक लाख रुपये हो गई है। बलीराम ने कच्चे मकान की मरम्मत कराकर पक्का बना लिया है। वह अपने दोनों बच्चों को बेहतर शिक्षा देकर, उनके भविष्य के प्रति आशान्वित है।

सात सौ की जनसंख्या वाले इस इच्छापुर गांव में पंचायत के अथक प्रयासों के कारण आज 400 भैंसें हैं और इनमें हरियाणा की संकर नस्ल की 20 गायें शामिल हैं।

(शेष पृष्ठ 44 पर)

रेशम योजना से हजारों परिवारों को रोजगार

डा. बृजनाथ सिंह

आज हमारा देश बेकारी की समस्या से ग्रसित है। रोजगार के नये विकल्पों की तलाश जारी है। भारत जैसे कृषि प्रधान और विकासशील देश कृषि का औद्योगीकरण और व्यवसायीकरण करके बेकारी की समस्या का हल कर सकते हैं। इसी कारण आज हमारे कृषि वैज्ञानिक आर्थिक तंगी से पीड़ित किसानों को नगदी फसल उगाने की सलाह दे रहे हैं। इससे उनका शहर की ओर पलायन भी थमेगा।

हमारे देश में मसाला, औषधीय और सुगंधित पौधों की खेती, रेशम कृमि पालन, मधुमक्खी पालन, सोयाबीन की खेती और कपास की खेती से कृषक मालामाल हो सकते हैं। मध्य प्रदेश में पिछले 5 वर्षों से रेशम उत्पादन के लिए मध्य प्रदेश सरकार ने विशेष प्रयत्न किए हैं। जापान के सहयोग से बिलासपुर, विदिशा, सरगुजा और रायगढ़ जिले में 750 करोड़ रुपये की लागत से करीब 50 हजार परिवारों को रोजगार मिल रहा है। इसके अलावा राज्य सरकार ने रेशम उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए शासन स्तर पर रेशम विकास तथा विपणन सहकारी संघ और डिजाइन तथा उत्पादन बैंक की स्थापना भी की है।

प्रारंभ में कृषक रेशम कृमि पालन के प्रति उदासीन थे, मगर धीरे-धीरे वे अत्यधिक लाभ को देखते हुए अब इस अपरंपरागत उद्योग के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। यही स्थिति महिलाओं की भी है। अब वे भी इस रोजगार अभियान के प्रति आकर्षित हो रही हैं।

राज्य के सरगुजा, रायगढ़ और बिलासपुर जिलों में सात हजार हेक्टेयर भूमि में रेशम के कीड़े पालने का कार्य चल रहा है।

इस रेशम नवाचार परियोजना से राज्य में रेशम की गुणवत्ता के विकास के साथ-साथ हजारों परिवारों को रोजगार मुहैया कराने की संभावनाएं बढ़ गई हैं, जिससे कृषकों और भूमिहीन मजदूरों के जीवन-स्तर में भी सुधार हो रहा है। मध्य प्रदेश में रेशम परियोजना को बढ़ावा देने के लिए 1997 से मध्य प्रदेश राज्य रेशम उत्पादन तथा व्यापार सहकारी संघ भी कोकून उत्पादन, संकलन, धागा, वस्त्र उत्पादन और डिजाइन तथा उत्पाद विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। साथ ही यह संघ विपणन और कृषकों को बेहतर मूल्य दिलाने की कोशिश भी कर रहा है।

इसके अतिरिक्त राज्य के रेशम कृषकों को कर्नाटक के अंतर्राज्यीय भ्रमण पर ले जाया जाता है, जिससे वे प्रेरणा ले सकें।

इस प्रकार राज्य में रेशम नवाचार परियोजना गरीबी निवारण में रामबाण उपाय साबित हो रही है। भूमिहीन मजदूरों और काम की इच्छुक अनपढ़ महिलाओं के लिए तो यह परियोजना दरिद्र के लिए नारायण की कृपा और वरदान से कम नहीं है। दरअसल, राज्य में अभी यह परियोजना शैशवास्था में है। ऐसी स्थिति में इसके विकास की व्यापक संभावनाएं हैं। इसी को कहते हैं—'हिम्मते मर्द, मददे खुदा'। ❑

(पृष्ठ 27 का शेष) **अनूठी सरपंच : लीलाबाई आंजना**

आवास हेतु 9-9 हजार रुपये स्वीकृत करवाकर एक समान और एक ही मोहल्ले में आवास निर्माण अपनी देख-रेख में करवाया। इसमें 9 आवास पूर्ण हो चुके हैं तथा साफ-सुथरी व सुंदर आवासों की यह बस्ती दूर से ही लोगों का ध्यान आकृष्ट करती है।

अपनी सफलता और करीब चार-वर्षीय कार्यकाल पर प्रफुल्लित होकर लीलाबाई बताती है कि उनके निर्णय केवल उन्हीं के होते हैं, पति महोदय का हस्तक्षेप वे बर्दाश्त नहीं करती हैं। इसी के साथ अधिकारियों के सहयोग व व्यवहार का प्रश्न करने पर उनका उत्तर था कि "जैसा सरपंच होगा वैसा कर्मचारी का व्यवहार होगा।" पांचवीं तक शिक्षा प्राप्त सरपंच को जब तक पंचायतकर्मी पत्र पढ़कर नहीं सुना देता तब तक उस पर दस्तखत नहीं करती है। शंका होने पर अन्य लोगों से उसकी तस्दीक भी कराती है। लीलाबाई बेबाकी से कहती है कि उनसे आज तक किसी भी अधिकारी या कर्मचारी ने रिश्वत की मांग नहीं की।

उज्जैन-बडनगर मार्ग पर बसे इस नलवा गांव के गरीबों को नया पंचायती राज लागू होने के बाद 75 के लक्ष्य के विरुद्ध 280 एक-बत्ती कनेक्शन दिलवाने वाली इस महिला सरपंच की हार्दिक इच्छा है कि वे अपने कार्यकाल में किसी भी तरह नलवा गांव की नल-जल योजना को मंजूर करवा ले। ❑

भारत गौरव :

अमर्त्य सेन

वेद प्रकाश अरोड़ा

इस वर्ष अर्थशास्त्र के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले भारत गौरव डा. अमर्त्य सेन के प्रखर व्यक्तित्व और गहन गंभीर कृतित्व का मूल्यांकन करने में शब्द कुछ लंगड़े और कमजोर पड़ रहे हैं। लेकिन यह एक निर्विवाद तथ्य है कि इस सुविख्यात अर्थशास्त्री को इस वर्ष अर्थशास्त्र के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार के लिए चुना जाना न सिर्फ उनके और पश्चिम बंगाल के लिए गर्व की बात है, बल्कि इससे भारत ही नहीं सारे एशिया और विकासशील जगत का कद कुछ बढ़ गया है। वह नोबेल पुरस्कार पाने वाले छठे भारतीय और अर्थशास्त्र के लिए यह पुरस्कार प्राप्त करने वाले पहले एशियाई हैं। डा. अमर्त्य सेन से पूर्व पश्चिम बंगाल की दो विश्वविख्यात विभूतियों—रवींद्रनाथ ठाकुर और मदर टेरेसा तथा भारत की तीन अन्य हस्तियों—चंद्रशेखर वेंकट रामन, हरगोविंद खुराना और सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर को—नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

भारत में सबसे पहले यह पुरस्कार राष्ट्रगान के रचयिता रवींद्रनाथ ठाकुर को मिला था। उन्हें 1913 में साहित्य में अपनी पुस्तक गीतांजलि के लिए यह पुरस्कार दिया गया था। सन् 1930 में भौतिक शास्त्री चंद्रशेखर वेंकट रामन, प्रकाश संबंधी अनुसंधान के लिए इस सम्मान से विभूषित किए गए। रामन प्रभाव के नाम से इस खोज ने भरपूर यश बटोरा। सन् 1968 में हरगोविंद खुराना को औषधि के लिए पुरस्कृत किया गया। 1979 में अल्बानिया मूल की भारत की नागरिक मदर टेरेसा को शांति के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित कर स्वयं यह पुरस्कार चमत्कृत हो उठा। 1983 में चंद्रशेखर की वेंकट रामन के भतीजे सुब्रह्मण्यम चन्द्रशेखर ने भौतिकी में नोबेल पुरस्कार जीत कर, भारत की प्रतिष्ठा पर चार चांद लगा दिए। अब कल्याणकारी अर्थशास्त्र को एक नई विधा के रूप में स्थापित कर प्रो. अमर्त्य सेन ने भारत की ख्याति को आसमान की बुलंदियों तक पहुंचा दिया है। 64-वर्षीय डा. अमर्त्य सेन को सबसे अधिक खुशी इसलिए हुई है कि इस विषय को अंततः विश्व की सबसे प्रतिष्ठित संस्था से मान्यता मिली है तथा शोधकर्ताओं की भावी पीढ़ियों के लिए अध्ययन के नए क्षेत्र खुल गए हैं।

इससे पहले लंबे समय तक अर्थशास्त्र में ऐसे शोधकर्ताओं को नोबेल पुरस्कार से नवाज़ा जाता रहा है जो जन-आकांक्षाओं से अनभिज्ञ रहकर जटिल सिद्धांतों और खोखले प्रणाली विज्ञान का बखान करते रहे हैं। लेकिन अमर्त्य सेन के विकासात्मक आर्थिक सिद्धांतों में वक्र रेखाओं और आंकड़ों-तालिकाओं की भरमार नहीं है। वह धरती की सौंध तथा जन-जन की पीड़ा से जुड़े हैं। उन्होंने अंकगणित के समझ से परे तथा उबाने वाले फार्मूले नहीं दिए हैं। उन्होंने मार्ग-निर्देशक की भूमिका निभाते हुए बताया है कि मात्र मुद्रा, विपणन, विनिमय, बाजार आदि ही अर्थशास्त्र के क्षेत्र में नहीं बल्कि अभाव, अकाल, आपदाएं और अनापूर्ति जैसे विषय भी उसके दायरे में आते हैं। सामाजिक सरोकारों को संतुष्ट करने वाले आर्थिक सिद्धांतों के समीकरण ही सार्थक हो सकते हैं। जाने-माने ब्रिटिश अर्थशास्त्री केंस ने 1930 के दशक में इसी दिशा में काम करते हुए अर्थशास्त्र का उपयोग जन-कल्याण के लिए करने पर जोर दिया था। उनकी मान्यता थी कि बिजलीघरों, बंदरगाहों, सड़कों और रेल लाइनों के विकास को बड़े पैमाने पर हाथ में लेने से भारी संख्या में लोगों को रोजगार और रोजी-रोटी मिलेगी। उनकी क्रय-शक्ति बढ़ने से मंदी और भुखमरी दूर होगी। अर्थ-चक्र भी तेजी से चलने लगेगा। इस समय अर्थशास्त्र के इस जन-कल्याणकारी पक्ष के विश्लेषण में लगे विद्वानों में प्रोफेसर अमर्त्य सेन का स्थान अग्रणी है। उन्हें गुर्नार मिरडल और कैनेथ एरो के काफी बाद कल्याणपरक अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार मिला है। इस क्षेत्र में पहली बार अमरीका के प्रमुख अर्थशास्त्री प्रोफेसर कैनेथ एरो को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। प्रो. अमर्त्य सेन ने कैनेथ एरो की मान्यताओं को आगे बढ़ाते और पुष्ट करते हुए जन-कल्याणकारी अर्थशास्त्र को न केवल विश्वसनीय बनाया है, बल्कि विकसित देशों की पूंजीवादी सरकारों को

अर्थशास्त्र के नैतिक और लोकाचार पक्ष पर गंभीरता से विचार करने पर विवश भी कर दिया है। लेकिन अन्य जन-कल्याणकारी अर्थशास्त्रियों से कुछ अलग हटते हुए उन्होंने अपने लोकहितपरक अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत अनुभवों का रंग कहीं अधिक चढ़ा दिया है। उनकी नम आंखों ने कंगाली की जिस हृदयविदारक पीड़ा को देखा, वह सब उनकी लेखनी में उतर आया है। वैसे भी कोई भी शास्त्र हो, उसकी सार्थकता पीड़ित मानवता से जुड़ने और उसे व्यावहारिक बनाने से होती है। रामकृष्ण परमहंस के शिष्य विवेकानंद ने जिस तरह धर्म और वेदांत को व्यवहारिकता और नैतिकता का संगम बना दिया था, कुछ उसी तरह के मेल मिलाप से जन-पीड़ा को वाणी देने का प्रयास डा. अमर्त्य सेन ने किया है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि मानवीय चेहरे वाले अर्थशास्त्र पर उन्हें पुरस्कार मिलना आज के विश्वव्यापी अर्थशास्त्र की सामान्य तसवीर में बदलाव का सूचक है। बंगाल के अकाल ने जहां उनके वामपंथी रुझान को बल प्रदान किया, वहां शांति निकेतन के माहौल की गांधीवादी सोच, स्वतंत्र चिंतन, लोकतंत्र और मिश्रित अर्थशास्त्र की गूंज भी उनकी कृतियों में है। प्रोफेसर अमर्त्य सेन को दिए गए रायल स्वीडिश अकादमी आफ सांईसेज के प्रशस्ति पत्र में भी उनके आर्थिक सिद्धांतों का मूल्यांकन तथा अर्थशास्त्र को उनके योगदान का उल्लेख आज के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इससे न केवल उनका जनहित दृष्टिकोण बल्कि उनकी अन्य विशिष्टिताएं भी उजागर हुई हैं। उन्होंने अर्थशास्त्र और दर्शन का सुंदर संयोजन-समंजन कर आर्थिक समस्याओं के वैचारिक मंथन में नैतिकता का भी समावेश किया है। उन्होंने निर्धनतम व्यक्तियों के कल्याण को हमेशा केंद्रबिंदु में रखकर विकासात्मक अर्थशास्त्र का निरूपण-विवेचन किया है।

उन्होंने इस आम धारणा को चुनौती दी है कि अनाज की कमी दुर्भिक्ष या अकाल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और कभी-कभी एकमात्र कारण होती है। कई आपदाओं के गहरे अध्ययन के आधार पर वे तर्क देते हैं कि अकाल ऐसे समय भी पड़े हैं जब खाद्यान्नों की उपलब्धता और आपूर्ति की कमी नहीं थी। अपने शोध ग्रंथ *च्वायस आफ टेक्नीक, पावर्टी एंड फेमाइन* तथा अधिकार और वंचन पर लिखे निबंध *एन एसे आन इन्टाइटलमेंट एंड डिप्राइवेशन* में उन्होंने उन मान्यताओं को नकार दिया है जिन्हें अब तक गरीबी और अकाल के लिए जिम्मेदार माना जाता रहा है। अपनी इन कृतियों में उन्होंने भारत, बंगला देश और सहारा के कुछ देशों में पड़े अकालों के विशद और गहरे अध्ययन के बाद इस तथ्य को रेखांकित किया है कि जब भंडारों में अनाज भरे होते हैं, तब भी अकाल पड़ सकते हैं और पड़े हैं। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान 1943 में बंगाल में तथा 1974 में बंगला देश में खेतिहर मजदूरों और अन्य निर्धन व्यक्तियों की क्रय-शक्ति कम होने या समाप्त होने पर भीषण अकाल पड़ा था। उस वक्त अनाज की कमी नहीं थी, लेकिन उसका मूल्य बहुत चढ़ा हुआ था और मुद्रास्फीति भी अधिक थी। फटेहाल कोई भी खेतिहर मजदूर या अन्य गरीब व्यक्ति क्या बचाता और क्या खाता। अनाज खरीदने के लिए धन न होने पर पेट में एक दाना तक नहीं जा सका। नतीजतन सब तरफ हाहाकार मच उठा। बंगाल के अकाल के समय अमर्त्य सेन मात्र दस वर्ष के थे। उन्होंने अपने घर के सामने और कलकत्ता की सड़कों पर कृषकाय और कंकाल बने हजारों व्यक्तियों को तड़प-तड़प कर दम तोड़ते देखा था। यही दर्दनाक स्मृतियां हमेशा उनके साथ रही हैं। उन्होंने ऐसा ही लोमहर्षक दृश्य 1974 में बंगला देश में पड़े अकाल के दौरान अपनी आंखों से देखा। प्रलयंकारी बाढ़ के पानी में विशाल क्षेत्रों के डूब जाने पर मजदूरों के पास न तो कोई काम रहा और न चावल खरीदने के लिए पैसा। इसी नारकीय गरीबी, भूख और बेरोजगारी से छुटकारा दिलाने का गुरुमंत्र उनकी कृतियों में बार-बार उजागर हुआ है। साथ ही उन्होंने व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत किए हैं। 1971 से अब तक अमर्त्य सेन ने जो 18 पुस्तकें लिखी हैं और 200 से अधिक अध्ययन पत्र प्रस्तुत किए हैं, उनमें उनकी विचार-सरिता साफ प्रवाहित होती दिखाई देती है।

उनकी मान्यता थी कि अकाल का एक अन्य बड़ा कारण गरीबों को सस्ता अनाज बेचने और वितरण व्यवस्था का दोषपूर्ण होना है। सामान्य काल में खेत मजदूर खून-पसीना बहाकर भरपूर उत्पादन करता है लेकिन मामूली मजदूरी मिलने से उसकी हालत खस्ता रहती है। उसकी तंगहाली और बदहाली ही अकाल का मुख्य कारण बन जाती है। लेकिन डा. अमर्त्य सेन का यह भी मानना है कि फासिस्टवादी, तानाशाही और पूंजीवादी देशों की तुलना में लोकतांत्रिक देशों में जन-प्रतिनिधियों की उंगली हमेशा जनता जनार्दन की नब्ज पर रहती है। इस फीडबैक के सहारे वे जन-आकांक्षाओं, अपेक्षाओं के अनुसार अपने कार्यक्रमों और नीतियों में आवश्यक संशोधन तथा परिवर्धन करते रहते हैं और लोगों की तकलीफें दूर करने का प्रयास करते रहते हैं। अगर इसमें वे सफल नहीं होते तो आम लोग चुनाव में उन्हें गद्दी से उतार फेंकते हैं। वैसे भी लोकतांत्रिक शासन लोक कल्याणकारी होता है। वह न्यूनतम मजदूरी जैसे श्रम कल्याण कार्यों से आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

डा. अमर्त्य सेन शिक्षा को भी जन-साधारण की दशा सुधारने का सशक्त अस्त्र मानते थे। एक अन्य जाने-माने अर्थशास्त्री जीन ड्रेज के साथ मिलकर, उन्होंने केरल के ग्रामीणों और गांवों की आर्थिक दशा का बारीकी से अध्ययन किया। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार से आम आदमी का जीवन-स्तर तो उठता ही है, अन्य क्षेत्रों में भी उसके दृष्टिकोण में सुखद परिवर्तन होता है। शिक्षा का ही सुपरिणाम है कि भारत के अन्य राज्यों की तुलना में केरल में जीवन-दर अधिक तथा मृत्यु-दर कम है। लेकिन वह शिक्षा-प्रसार को सामाजिक लक्ष्य ही नहीं, आर्थिक लक्ष्य भी मानते हैं। इस तरह शिक्षा का ही परिणाम है कि भारत के मुकाबले चीन में औसत जीवन दर अधिक अर्थात् 70 वर्ष है। इसके बावजूद 1958 से 1961 के बीच तानाशाही चीन में पड़े अकाल से तीन करोड़ व्यक्तियों की जीवन-लीला समाप्त हो गई। यह संख्या बंगाल में मरे लगभग तीस लाख व्यक्तियों की तुलना में 10 गुना है। इसीलिए वे वामपंथी झुकाव के बावजूद पूर्व-एशियाई देशों के माडल के अंधानुकरण के विरुद्ध हैं। साथ ही वह 1991 में आरंभ हुए आर्थिक सुधारों की कमियां दूर करने तथा शिक्षा, स्वास्थ्य की देख-रेख, भूमि सुधारों, सामाजिक सुरक्षा और बच्चों के पोषाहार जैसे क्षेत्रों में गतिविधियों के विस्तार पर जोर देते हैं।

वह सांप्रदायिक फासिस्टवाद तथा गुटों से बंधे राष्ट्रवाद को भी अर्ध-

विकसित और अल्प-विकसित देशों के आर्थिक पतन का कारण मानते हैं। डा. अमर्त्य सेन का कल्याणपरक अर्थशास्त्र नेहरूवादी विकास के माडल तथा मनमोहन सिंह के आर्थिक माडल—दोनों से अलग है। नेहरूवादी माडल में उपकरणों और मशीनों पर जोर दिया जाता रहा है। उधर मनमोहन सिंह के आर्थिक माडल के अंदर बाजारीकरण, निजीकरण और विश्वीकरण में कमजोर और पिछड़े वर्ग के लोगों की सुरक्षा की पक्की तथा पुख्ता व्यवस्था नहीं है। इसीलिए उदारीकरण की नीति के बारे में उनके विचार कोई खास अनुकूल नहीं हैं। बाजार को अंकुश-मुक्त कर, उसे अपनी शक्तियों पर छोड़ देना खतरनाक प्रमाणित हो सकता है। विशेष रूप से एशिया के टाइगर-देशों की मुद्राओं और अर्थतंत्रों के पतन के बाद समग्र संसार में उदारीकरण के विरुद्ध आलोचना के स्वर जोर पकड़ रहे हैं। डा. अमर्त्य सेन वाल स्ट्रीट और दलाल स्ट्रीट के शेयर बाजार और पूंजी बाजार के उतार-चढ़ावों से चिंतित होने के बजाय मानव पूंजी निर्माण को सर्वाधिक महत्व देते हैं और इसके लिए साक्षरता तथा सभी को प्राथमिक शिक्षा दिए जाने को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करते हैं। वह 20-सूत्री कार्यक्रम को तैयार करने वाले अनौपचारिक दल के प्रमुख सदस्य भी रहे। इस कार्यक्रम में प्राथमिक शिक्षा, बंधुआ मजदूरों की मुक्ति और कृषि ऋणों की माफी जैसे मुद्दों और उनके क्रियान्वयन पर जोर देकर देश की विशाल मानव-शक्ति को मान्यता देने का महान प्रयास किया गया था। उनकी आर्थिक सोच हमेशा आम आदमी पर केन्द्रित रही है।

परिवार

विकासात्मक अर्थशास्त्र में नई सोच और नई राह का दर्शन डा. अमर्त्य सेन ने कराया है जिससे वह पिछले अनेक वर्षों से नोबेल पुरस्कार के प्रबल दावेदार बने हुए थे। अब यह पुरस्कार पाकर वह सचमुच अमर हो गए हैं तथा उन्होंने अपना नाम सार्थक कर दिखाया है। यहां यह उल्लेख करना असंगत नहीं होगा कि मां अमिता के इस तेजस्वी पुत्र का नामकरण भारत के प्रथम नोबेल पुरस्कार विजेता गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने ही दिया था। उन्होंने उनका नाम यह सोच कर रखा था कि वह अपने नाम को अपने कार्यों से किसी दिन अमर कर दिखाएगा। आखिर में उनकी मनोकामना और आशीर्वाद इस वर्ष 14 अक्तूबर को रंग लाया, जब रायल स्वीडिश अकादमी ने डा. अमर्त्य सेन को आगामी 10 दिसंबर को स्टाकहोम में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित करने की घोषणा की। 14 अक्तूबर की शाम को ही जब डा. अमर्त्य सेन ने न्यूयार्क से शांति निकेतन में एकांतवासी 87-वर्षीय अपनी वृद्ध मां को प्रतीशी निवास पर दूरभाष के जरिये बताया कि मां तुम्हारे बेटे को 9 लाख 64 हजार अमरीकी डालर का नोबेल पुरस्कार देने का निर्णय किया गया है, तब मां को यकीन ही नहीं हुआ क्योंकि पहले भी कई बार अमर्त्य को नोबेल पुरस्कार देने की चर्चा खूब चली थी, लेकिन लाटरी उसके नाम खुल ही नहीं पाती थी। जब अमिता के पुत्र 'बबलू' के बार-बार यह कहने पर कि मां विश्वास करो—यह सच है तथा शांतिनिकेतन में यह बात सबको बता दो, तब बूढ़ी मां के जर्जर शरीर में एक अजीब सी बिजली कौंध गई। उसकी खुशी का पारावार नहीं रहा। रवींद्रनाथ ठाकुर की भविष्यवाणी अक्षरश: सत्य प्रमाणित हुई।

सच तो यह है कि डा. अमर्त्य की जीवन-यात्रा असफलताओं पर सफलताओं की विजय की एक गौरव गाथा बन गई है। वह असाधारण प्रतिभा के धनी हैं। चाहे कलकत्ता का प्रेजीडेंसी कालेज हो, या शांतिनिकेतन का स्कूल और चाहे बाद में लंदन का हार्डवर्ड कालेज हो या कैंब्रिज कालेज, उन्होंने प्रत्येक शिक्षण संस्थान में प्रथम श्रेणी प्राप्त कर अपनी विलक्षण प्रतिभा की धाक जमाई। शांतिनिकेतन में 1933 में डा. आशुतोष सेन और अमिता सेन के यहां जन्मे डा. अमर्त्य सेन अपनी जन्मजात बौद्धिक प्रखरता के कारण मात्र 23 वर्ष की छोटी-सी उम्र में कलकत्ता के जादवपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। अध्यापक के रूप में उनका लंबा जीवन 1956 में यहीं से आरंभ हुआ। तब से डा. अमर्त्य सेन देश-विदेश के कुछ श्रेष्ठतम विश्वविद्यालयों और अकादमियों में अध्यापन कार्य कर चुके हैं। इस समय वह ब्रिटेन के कैंब्रिज स्थित ट्रिनिटी कालेज में पढ़ाते हैं। उन्होंने 1963 से आठ वर्ष तक दिल्ली स्कूल आफ इकोनोमिक्स में अध्यापन किया। वे आज भी इस शिक्षा केंद्र के मानद प्रोफेसर हैं।

डा. अमर्त्य सेन ने ब्रिटेन में अध्यापन व्यवसाय को जारी रखते हुए भी भारत की नागरिकता नहीं छोड़ी है। उनके भारत प्रेम में कोई फर्क नहीं पड़ा है। हालांकि वेतन के रूप में उन्हें काफी मोटी रकम मिलती है और जीवन की सब सुख-सुविधाएं प्राप्त हैं, तो भी उनका भारत के प्रति मोह और देशभक्ति पूर्ववत कायम है। लगभग तीस वर्ष पहले डा. हरगोविंद खुराना ने भारत में कहीं भी 500 रुपये मासिक वेतन की नौकरी न मिलने के बाद अमरीका जाकर वहीं की नागरिकता प्राप्त करना बेहतर समझा था। लेकिन डा. अमर्त्य सेन ने भारत और शांतिनिकेतन से संबंधों को बरकरार रखा है। प्राय: हर छह महीने या वर्ष में कम-से-कम एक बार वह अपनी मां और छोटी बहन से मिलने पश्चिम बंगाल चले जाते हैं। वहां उन्हें अकथ्य शांति और एक विचित्र ऊर्जा मिलती है। सफेद धोती-कुर्ता उनका पसंदीदा परिधान है। इसी पोशाक में आम लोगों से मिलने, उनका हाल-चाल पूछने तथा अपनी पुरानी साइकल पर सवार होकर विश्व भारती में घूमने में उन्हें जो आनंद मिलता है, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस गैरवर्णा कद्दावार व्यक्ति के सरल सादे बचपन और हाई स्कूल की न जाने कितनी अमिट यादें वहां जुड़ी हुई हैं, जिसका अनिर्वचनीय आनंद वे वहां जाने पर ही ले पाते हैं। गंभीर विषयों में डूबे रहने वाले इस गंभीर व्यक्ति का हास्यबोध देखते-सुनते बनता है। एक बार की बात है जब एक विदेशी होटल की महिला रिसैपशनिस्ट को उनके नाम के अंतिम शब्द 'सेन' का उच्चारण समझ में नहीं आया तो डा. अमर्त्य सेन ने समझाते हुए बताया 'एस' फार 'समबोडी', 'ए' फार 'एवरी बोडी' और 'एन' फार 'नो बोडी'।

डा. सेन आर्थिक दर्शन में अपने क्रांतिकारी योगदान के लिए विशेष रूप से जनपरक विकास के उद्देश्य के लिए चिरकाल तक याद किए जाते रहेंगे। वह भौतिक और तकनीकी प्रगति को ही नहीं, बल्कि मानव खुशी तथा कल्याण को विकास का मुख्य उद्देश्य मानकर जीवन को जीने लायक बनाने के प्रबल पक्षधर हैं। ❑

क्या दिया उसे?

विमलेश गंगवार 'दिपि'

वह गांव में पैदा हुआ
पला-पोसा बड़ा हुआ
गांव की अमराइयों में
लगा उसे जीवन निस्सार।

नजदीक के शहर में वह
आ गया, कुछ पढ़ा लिखा
और फिर नौकरी ज्वाइन की
प्रदेश की राजधानी में।

लगा उसे कुछ इस तरह
कैरियर नहीं बन रहा
जो ऊंचाइयां पाना चाहता
वह पा नहीं सक रहा।

वह पहुंचा देश की राजधानी
विराट दिल्ली नगरी में
ऊंची इमारतों और ऊंचे लोगों के
मध्य जीवन-यापन करने लगा।

दिल उसका वहां भी न लगा
जो चाहिए उसे वहां भी न मिला
अब सुना है कि वह
अमेरिका का पासपोर्ट बनवा रहा है।

उड़ेगा वह विहंग-सा आकाश की ऊंचाइयों पर
तुंग शिखरों पर वह चढ़ेगा, माना,
पर क्या उसने सोचा कभी
जिस गांव ने की परवरिश उसकी
क्या दिया उसे उसने
क्या उस गांव की अमराइयों के प्रति
कुछ कर्तव्य न था उसका? ❑

हमारे अन्य उत्पाद :
क्लारपायरीफोस टेक 94% व 20, 40.4, 48% ई.सी. इन्डोसल्फान टेक 94% व 35%, कार्बोफयूरान 3 जी, 5 जी, 10 जी, फेनवलेरेट टेक 94% व 20% ई.सी., 04% डस्ट, कार्बेनडेजिम 50% डब्ल्यू.पी., सल्फर 80% डब्ल्यू.पी., कापर आक्सी क्लोराइड 50% डब्ल्यू.पी. व अन्य 60 कीटनाशक फार्मूलेशन। हम टर्नकी आधार पर टेक्नीकल ग्रेड कीटनाशकों, कीटनाशकों के फार्मूलेशन और एन.पी.के. ग्रेनूलेटेड उर्वरक संयंत्र के लिए तकनीकी जानकारी भी सुलभ कराते हैं।

वानिकी विकास परियोजना : प्रगति के तीन वर्ष

घनश्याम वर्मा *

राष्ट्रीय वन नीति-1988 के अनुसार पारिस्थितिकीय संतुलन की दृष्टि से भू-भाग का एक-तिहाई क्षेत्र का वनाच्छादित होना आवश्यक है। इस वन नीति में पहाड़ी क्षेत्रों के दो-तिहाई भू-भाग को अनिवार्यत: वनाच्छादित करने का सुझाव भी दिया गया है। राजस्थान में मरुस्थलीय परिस्थितियों के कारण 9.32 प्रतिशत भू-भाग पर ही वन क्षेत्र हैं, जिसमें से सघन वन क्षेत्र मात्र 3.83 प्रतिशत भूमि पर ही उपलब्ध है।

राज्य की विषम भौगोलिक परिस्थितियां यथा—वर्षा का अभाव,असमय वर्षा, खंड वर्षा, अधिक वर्षा, निरंतर अकालग्रस्त परिस्थितियां, ग्रीष्मकाल में भीषण गर्मी, झुलसा देने वाली धूप और प्राणघातक लू का प्रकोप, शीतकाल में कड़कड़ाती सर्दी, पाला, ओला वृष्टि के अलावा क्षारीय तथा लवणीय भूमि इत्यादि कारणों से वनाच्छादित क्षेत्रफल में वृद्धि करना अत्यंत दुष्कर कार्य है।

राजस्थान में वन विभाग द्वारा यहां की भौगोलिक और जलवायुगत परिस्थितियों तथा विभिन्न पर्यावरणीय कारकों को दृष्टिगत रखते हुए एक दूरगामी बीस-वर्षीय समयबद्ध कार्यक्रम तैयार किया गया है, जिसमें प्रदेश के 20 प्रतिशत भू-भाग को वनाच्छादित करने का निर्णय किया गया। राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार यह प्रतिशत काफी कम होने के बावजूद राज्य की जलवायुगत, मृदीय तथा आबादी की बहुलता संबंधी विषम परिस्थितियों के मद्देनजर अनवरत विकास के दृष्टिकोण से यह लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

वन-संपदा समाज के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वनों पर हमारी निर्भरता चिरस्थायी है। ईंधन, चारा, इमारती लकड़ी, जड़ी-बूटियां, फल-फूल, जल, वायु और हरितिमा की प्राप्ति अन्य संसाधनों से नहीं, बल्कि वनों से ही होती है। अत: वन संवर्धन और संरक्षण, पारिस्थितिकीय संतुलन तथा पर्यावरण सुधार के लिए सरकार द्वारा राज्य में विभिन्न वानिकी विकास कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं, जिनमें वानिकी विकास परियोजना एक महत्वपूर्ण परियोजना है।

*सूचना एवं जन संपर्क अधिकारी, वानिकी विकास परियोजना, राजस्थान

वन संरक्षण और संवर्धन तथा पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने की दृष्टि से राज्य के गैर-मरुस्थलीय पंद्रह जिलों में क्रियान्वित करने के लिए आकल्पित की गई वानिकी विकास परियोजना राज्य की एक महत्वाकांक्षी पंचवर्षीय परियोजना है। इस परियोजना के क्रियान्वयन में जापान सरकार के 'समुद्र पारीय आर्थिक सहयोग कोष' (ओ.ई.सी.एफ.) से 146 करोड़ रुपये का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। परियोजना का शुभारंभ वर्ष 1995-96 में हुआ, जिसके तहत अजमेर, बारां, बूंदी, भरतपुर, भीलवाड़ा, दौसा, धौलपुर, डूंगरपुर, जयपुर, झालावाड़, करौली, कोटा, राजसमन्द, सवाई माधोपुर तथा टोंक जिलों में वानिकी विकास के विभिन्न कार्य कराने का प्रावधान किया गया है।

उद्देश्य और विशिष्टताएं

परियोजना के मुख्य उद्देश्यों में मानव तथा संस्थागत संसाधनों का विकास, सघन वृक्षारोपण, चरागाह विकास, पारिस्थितिकीय पुनर्स्थापना, मरुस्थल का प्रसार रोकना, भू-क्षरण की रोकथाम, भूमिगत जलस्तर में वृद्धि, नमी संरक्षण के उपाय, ईंधन, चारा, लघु वन उपज तथा इमारती लकड़ी की स्थानीय मांग की निरंतर आपूर्ति, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की उपलब्धता तथा समाज का आर्थिक विकास, शहरी क्षेत्रों में रिक्त स्थानों पर वृक्षारोपण, टिब्बा स्थिरीकरण कर वातावरण में सुधार, जैव विविधता का विकास तथा जीनपूल सुधार आदि को सम्मिलित किया गया है।

इस परियोजना की मुख्य विशेषताओं में ग्रामीण स्तर पर सूक्ष्म नियोजन कर वृक्षारोपण योजनाओं का क्रियान्वयन करना, जल ग्रहण क्षेत्रों को आधार बनाकर कार्य कराना, समूह (कलस्टर) के आधार पर कार्यों का संपादन, वन सुरक्षा एवं प्रबंध समितियों का गठन तथा उनका सक्रिय सहयोग लेना, संचार-प्रसार कार्यों में कृषि विभाग से सहयोग लेना तथा सूक्ष्म आयोजनानुसार वनरोपण का वितरण करना आदि को शामिल करते हुए, इसे जनोपयोगी तथा व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया गया।

लक्ष्य और उपलब्धियां

इस पंचवर्षीय परियोजना के तहत 15 जिलों के 55 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में वृक्षारोपण कराने का लक्ष्य है, जिसमें 41 हजार हेक्टेयर में वन भूमि पर तथा 14 हजार हेक्टेयर में सार्वजनिक भूमि पर वृक्षारोपण कराया जाना है। 1995-98 की लक्षित अवधि के दौरान मार्च 1998 तक करीब 31 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में वृक्षारोपण का कार्य कराया जा चुका था। यह कार्य वृक्षविहीन पहाड़ियों, वनों, सार्वजनिक भूमि तथा चरागाह भूमि पर स्थल की आवश्यकतानुसार अपनाई गई तकनीक के तहत कराए गए हैं।

कृषि वानिकी कार्यक्रम के अंतर्गत शहरी तथा ग्रामीण अंचल में 8 करोड़ पौधों का वितरण करने का लक्ष्य निर्धारित है। आलोच्य अवधि में करीब सवा तीन करोड़ पौधों का वितरण हो चुका है। पौधशालाओं में पौध तैयार करते वक्त छायादार, फलदार, फूलदार, चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी देने वाले वृक्षों की प्रजातियों को प्राथमिकता दी जाती है।

नमी संरक्षण के उपाय

मरु प्रदेश राजस्थान में अकाल की नियमित स्थिति और विषम भौगोलिक परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए यह जरूरी है कि वर्षा के जल की एक-एक बूंद का संरक्षण तथा समुचित उपयोग हो, ताकि वृक्षारोपण कार्यों में सफलता मिल सके। इस परियोजना के तहत जल तथा मृदा संरक्षण के लिए मिट्टी व पत्थर के चैक डेम, वृक्षारोपण योग्य स्थलों में वी-डिच निर्माण, रिटेनिंग दीवार, कंटूर ट्रेंच, एनीकट तथा लघु जलाशयों का निर्माण कराने का प्रावधान है। परियोजना क्षेत्र में पांच वर्षों की अवधि में 530 मृदा तथा जल संरक्षण संरचनाएं बनाने का लक्ष्य है जबकि मार्च 1998 तक 309 संरचनाएं तैयार की जा चुकी हैं।

उन्नत शवदाह गृह

परियोजना के अंतर्गत संबद्ध जिलों में 250 उन्नत शवदाह गृहों के निर्माण के लक्ष्य के विपरीत मार्च 1998 तक 148 संयंत्र स्थापित किए जा चुके हैं। शवदाह संयंत्र बनवाने का कार्य मंडल वन अधिकारियों तथा वन संरक्षकों द्वारा निर्धारित माडल के अनुसार किया जाता है, जिसमें शव दहन क्रिया करने पर समय तथा ईंधन की 30 से 40 प्रतिशत तक बचत होती है। परियोजना द्वारा प्रति संयंत्र 20 हजार रुपये की राशि उपलब्ध कराई जाती है।

साझा वन प्रबंध

वनों की सुरक्षा तथा संवर्धन के लिए इस परियोजना के विभिन्न कार्यक्रमों में जन-सहभागिता की अवधारणा को विशेष रूप से सम्मिलित किया गया है। वानिकी कार्यों में जनता का सक्रिय सहयोग लेने के लिए ग्राम स्तरीय वन सुरक्षा तथा प्रबंध समितियों का गठन करके उनका पंजीकरण करना तथा उनके माध्यम से वन विकास और मृदा तथा नमी संरक्षण के कार्य करवाने के सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं। परियोजना से संबद्ध 15 जिलों में तीन वर्ष की लक्षित अवधि में 881 ग्राम वन सुरक्षा और प्रबंध समितियां गठित की जा चुकी हैं। समिति में संबद्ध राजस्व गांव के प्रत्येक परिवार से कम-से-कम एक व्यक्ति को सदस्य बनाने का प्रयास किया जाता है, ताकि साझा वन प्रबंधन की नीति को लागू करते हुए वानिकी विकास परियोजना का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन हो सके।

जन जागृति के अभिनव प्रयास

वानिकी विकास कार्यों में स्वत: स्फूर्त जन-सहयोग प्राप्त करने के लिए वन संरक्षण, संवर्धन तथा साझा वन प्रबंध के लिए धार्मिक प्रतिबद्धता का विकास किया जा रहा है। संचार-प्रसार गतिविधियों में कलश यात्रा, पीपल तथा तुलसी वृक्ष विवाह, मंत्रोच्चार के साथ वृक्षारोपण, पंचवटी स्थापना तथा देव प्रबोधनी एकादशी पर दैवीय वनों की स्थापना जैसे अभिनव कार्यक्रमों के माध्यम से प्रत्येक नर-नारी में वानिकी कार्यों के प्रति गहरी श्रद्धा उत्पन्न करने के प्रयासों के अनुकूल परिणाम दिखाई दे रहे हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि सक्रिय जन-सहभागिता की प्रतीक इस महत्वाकांक्षी परियोजना के माध्यम से राज्य के लगभग आधे भू-भाग पर प्रस्तावित वानिकी विकास कार्यों को संपन्न कराने में आशातीत सफलता मिलेगी। ❑

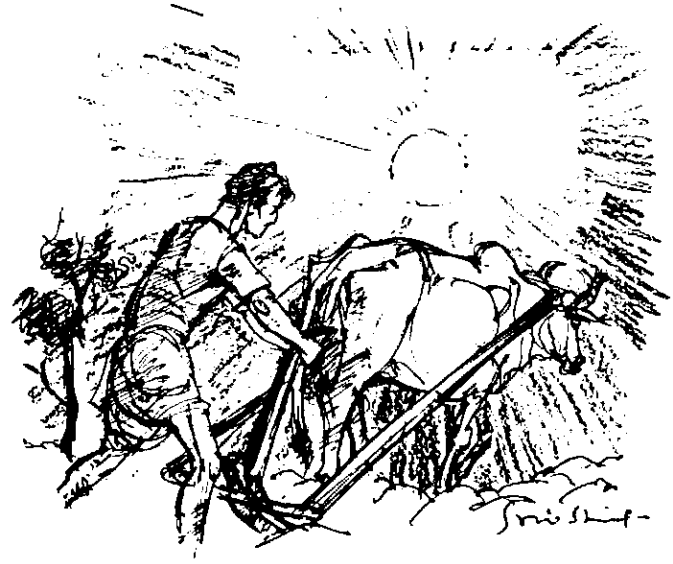

राजस्थान में बेहद लोकप्रिय हो रही है बी.ओ.टी. सड़क निर्माण योजना

पी.आर. त्रिवेदी

सड़कें किसी भी राष्ट्र के विकास की आधारशिला होती हैं तथा जिस राष्ट्र में परिवहन की जितनी अधिक सुविधाएं होंगी, भौतिक संसाधनों के विकास में वह राष्ट्र उतना ही अधिक गतिशील होगा। इन्हीं सुविधाओं के चलते भारत में महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों की गणना अग्रिम पंक्ति में है। राजस्थान सड़कों के मामले में पिछड़ा अवश्य है लेकिन हाल ही में राज्य में 'बी.ओ.टी.' (बिल्ट, आप्रेशन एंड ट्रांसफर) अर्थात 'बनाओ, संचालन और हस्तांतरण' योजना के अत्यधिक लोकप्रिय एवं सफल होने से राजस्थान के शीघ्र ही सड़कों के मामले में अन्य राज्यों से अग्रणी होने की पूरी संभावना है।

बी.ओ.टी. योजना सर्वप्रथम राऊ पीतमपुर (मध्य प्रदेश) में शुरू की गई थी। यह वास्तव में राजकीय निगमों द्वारा वित्त पोषित थी। महाराष्ट्र में थाणे में एक परियोजना इसी तर्ज पर लागू की गई थी जिसके वित्तीय संसाधनों में राज्य सरकार का बड़ा योगदान था। राजस्थान ने भी इस दिशा में पहल की और पहले के विभिन्न अवरोधों को ध्यान में रखते हुए कदम उठाए। भूमि अधिग्रहण, अलाइनमेंट में आने वाले अवरोध दूर करने, निर्माण-कार्य के संबंध में प्रशासनिक एवं वित्तीय स्वीकृतियां अथवा अनुमतियां दिलवाने का सारा दायित्व राज्य सरकार ने अपने ऊपर लिया। निवेशक को राज्य सरकार अपना सहयोगी एवं सहभागी मानती है तथा उनकी कठिनाइयों के समाधान की दिशा में सदैव प्रयत्नशील रहती है। कुछ परियोजनाओं के राज्य में लागू करने के अनुभवों के आधार पर राज्य सरकार ने निश्चय किया कि बी.ओ.टी. की समस्त परियोजनाओं के लिए 'त्रिपक्षीय समझौता' किया जाना चाहिए। इसमें एक पक्ष सरकार का, दूसरा निजी निवेशक का तथा तीसरा वित्तीय संस्थान का हो। इस व्यवस्था के उत्साहवर्धक लाभ सामने आए तथा निवेशक राज्य की ओर आकृष्ट होने लगे। बी.ओ.टी. योजना को त्रिपक्षीय समझौते के बाद वैधानिक स्वरूप प्रदान किया गया जबकि पहले सबसे बड़ी बाधा वित्तीय संस्थाओं की वसूली की गारंटी को लेकर थी। अब यह तय किया गया कि यदि निवेशक वित्तीय संस्थाओं को उनकी राशि नहीं लौटाते, तो वे स्वयं 'टोल टैक्स' वसूल कर सकती है।

आजाद भारत में वृहद राजस्थान के निर्माण के पश्चात पहली पंचवर्षीय योजना में सड़क निर्माण के लिए जहां योजनागत प्रावधान का लगभग 8 प्रतिशत व्यय सड़कों एवं यातायात सुरक्षा के लिए रखा गया था, वहीं सातवीं पंचवर्षीय योजना तक आते-आते यह घटकर मात्र 2.6 प्रतिशत रह गया। इस प्रकार निरंतर ह्रास के कारण राज्य में परिवहन का समुचित आधारभूत ढांचा खड़ा नहीं हो पाया। जिन सड़कों का निर्माण किया गया, उनके लिए भी इस बात की पूरी सावधानी नहीं बरती गई कि भविष्य में इन पर यातायात का घनत्व क्या होगा? इसके फलस्वरूप जिस मानक स्तर का कार्य होना चाहिए था, वह यहां नहीं हो पाया।

आठवीं पंचवर्षीय योजनाकाल में सड़क के मामलों में जागरूक लोगों ने यह अनुभव किया कि राज्य में इस विषम स्थिति से निपटने के लिए और अधिक संसाधनों को जुटाना पड़ेगा। साथ ही राज्य में सड़क विकास की एक दिशा निर्धारित करने की आवश्यकता भी महसूस की गई। शीघ्र ही राज्य में 1994 में सड़क नीति का निर्माण किया गया तथा राजस्थान इस क्रम में देश का पहला राज्य था। इस नीति के तहत वर्ष 1971 की जनसंख्या के अनुसार एक हजार से अधिक आबादी वाले समस्त गांवों, ग्राम पंचायत मुख्यालयों तथा विकास केंद्रों को सड़कों से जोड़ने का प्रावधान रखा गया। साथ ही, सभी जिला मुख्यालयों को दो लेन वाली सड़कों से और सभी उपखंड, तहसील तथा पंचायत समिति के मुख्यालयों को डामर की सड़कों से जोड़ने का प्रावधान किया गया। राज्य में 1990 तक जहां 10,700 गांव सड़कों से जुड़े हुए थे, वहीं इस सड़क नीति के कारण वर्ष 1997 के अंत तक 19,500 गांवों को सड़कों से जोड़ दिया गया। राज्य में नौवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक 1991 की जनगणना के अनुसार एक हजार की आबादी वाले तथा जनजाति बहुल एवं मरु क्षेत्र में 750 की आबादी वाले गांवों को सड़कों से जोड़ने का संकल्प है।

राजस्थान के 3,042 लाख वर्ग किलोमीटर विशाल क्षेत्रफल की 4.40 करोड़ जनसंख्या के घनत्व के मद्देनजर इस सड़क नीति पर अमल के लिए बहुत बड़ी धनराशि की आवश्यकता महसूस की गई जबकि राज्य

के योजनागत संसाधन सीमित हैं और इनसे सड़क निर्माण का कार्य विशाल परिमाण में होना असंभव है। इस समस्या के मद्देनजर जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की विभिन्न योजनाओं के माध्यम से मिट्टी का काम तथा दो परत गिट्टी का कार्य इस क्रम में कराए जाने का निर्णय हुआ। साथ ही, इस बात को भी देखा गया कि भविष्य में उस सड़क पर कितना यातायात गुजरेगा और क्या सड़क यातायात के दबाव को सहन कर सकेगी। इस क्रम में कृषि विपणन बोर्ड, केंद्रीय योजनाओं तथा अन्य विभागीय संसाधनों का उपयोग करने का निर्णय भी हुआ। आठवीं पंचवर्षीय योजनाकाल में विश्व बैंक ऋण और कृषि विकास परियोजना के तहत मिलने वाले ऋण से भी सड़क योजना का एक भाग पूर्ण किया गया। फिर भी इस क्रम में आवश्यक साधनों की पूर्ति होती नजर नहीं आई।

इन परिस्थितियों के मद्देनजर नीति क्रियान्वयन के क्रम में संस्थागत वित्त और निजी निवेश के आधार पर विकास के नए आयाम ढूंढे गए। अन्य राज्यों में जहां इस दिशा में अभी प्रारंभिक कार्यवाही हो रही है, वहीं राजस्थान में बी.ओ.टी. योजना के आधार पर 36 करोड़ रुपये की लागत के तीन महत्वाकांक्षी सड़क कार्य पूर्ण हो चुके हैं। इनमें हाल ही में 10.25 करोड़ रुपये की लागत से ब्यावर-पाली-अहमदाबाद राष्ट्रीय राजमार्ग-14 पर 'पाली बाईपास' मार्ग का लोकार्पण किया गया। इसके अलावा 2.95 करोड़ रुपये की लागत से पाली-सिरोही राष्ट्रीय राजमार्ग पर करौंटी पुल का निर्माण 18 माह के बजाय 11 माह में पूरा करके उसका लोकार्पण किया गया। इसके अलावा 24 करोड़ रुपये की लागत वाली उदयपुर 'बाईपास सड़क' का भी लोकार्पण इसी योजना के तहत किया गया। राज्य में तीन और सड़क परियोजनाएं बी.ओ.टी. योजना के आधार पर मंजूर की जा चुकी हैं, जिन पर शीघ्र ही कार्य शुरू होने जा रहा है।

वैसे देखा जाए तो बी.ओ.टी. योजना 'बनाओ, संचालन और हस्तांतरण' के सिद्धांत पर आधारित है तथा देश की एक प्रोजेक्ट डेवलपमेंट कंपनी—'ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड' इस योजना पर कार्य कर रही है। प्रस्तावित परियोजना, टी.सी.आई. इन्फ्रास्ट्रक्चर फाइनेंस लिमिटेड को बी.ओ.टी. के आधार पर राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत किया गया है। यह कंपनी टी.सी.आई. भोरुका कंपनी समूह के अधिकार क्षेत्र में है तथा इसका वार्षिक टर्न ओवर 600 करोड़ रुपये का है। कंपनी का मुख्य उद्देश्य एवं कार्य सड़क, रेल, पुल, नहरों, बंदरगाहों के निर्माण एवं अनुरक्षण का है। साथ ही यह सरकारी संपत्तियों के प्रबंध, वित्तीय, लीज, विकास तथा गिरवी रखने का काम भी करती है। कंपनी की व्यवस्था उच्च व्यवसायी प्रबंधकों तथा उच्च योग्यताधारी अभियंताओं और वित्तीय विशेषज्ञों के हाथ में है। कंपनी भारत सरकार के भूतल परिवहन मंत्रालय के अधीन कार्यरत भारतीय राष्ट्रीय उच्च राजमार्ग प्राधिकरण से प्रतिबद्ध होकर राजस्थान सहित अन्य राज्यों में भी महत्वाकांक्षी योजनाओं को अंजाम दे रही है।

पश्चिमी राजस्थान के पाली शहर में वाहनों के बढ़ते जमघट, ध्वनि एवं वायु प्रदूषण, सड़क के आस-पास बढ़े अतिक्रमण और कालेज-विद्यालय-आवासीय सुविधाओं में वृद्धि के कारण इस योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-14 पर शहर से बाहर की ओर एक बाईपास बनवाया गया। इसके लिए 22 नवंबर 1996 को समझौते पर हस्ताक्षर हुए। तत्पश्चात राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-14 के 106 कि.मी. से 114 कि.मी. की दूरी के मध्य आवश्यक 263 बीघा भूमि को अधिग्रहण कर उस पर 7 कि.मी. बाईपास बनाना तय हुआ। इस क्रम में 18 दिसंबर 1996 को राज्य के सार्वजनिक निर्माण विभाग मंत्री ने बाईपास की आधारशिला विधिवत रूप से रखी। इसे दो वर्ष की अवधि में बनाने का अनुमान था। लेकिन कंपनी की तत्परता से 15 माह की अवधि में ही पाली बाईपास निर्मित हो गया।

यह बाईपास पाली शहर के आवासीय क्षेत्र से बाहर होने के कारण इसकी दूरी में भी एक किलामीटर की कमी हो गई। बाईपास दो लेन में बनाया गया तथा बीच में 40 पाटो (स्पान) वाले चार पुलों और दो छोटी पुलियाओं जिनकी लंबाई 400 मीटर है, को भी बनाया गया। वर्तमान में दो लेन वाले इस बाईपास मार्ग को भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर चार लेन में परिवर्तित करने का प्रावधान भी रखा गया है। इसके अलावा मार्ग में सुविधा की दृष्टि से फ्यूल पंप, मोटेल, रेस्तरां तथा आटोमोबाइल की दुकानें और दोनों किनारों पर वृक्षारोपण करने की संभावनाएं रखी गई हैं।

संक्षेप में इस प्रकार की बी.ओ.टी. आधारित योजनाओं का राज्य में संभावनाओं का क्रम जारी है तथा राज्य सरकार इन कार्यों के इच्छुक निवेशकों को उनके सामर्थ्य, संसाधन एवं क्षमता में करवाने के लिए प्रोत्साहित करती है; सरकार निवेशक को एक प्रतिष्ठित सहयोगी के रूप में लेती है तथा राष्ट्र को भौतिक विकास की ओर अग्रसर बनाने वालों की आकांक्षाओं-प्रेरणाओं को जगाने के लिए कृतसंकल्प है। सरकार चाहती है कि बी.ओ.टी. जैसी योजना में सरकार का एक पैसा भी व्यय न हो ताकि भ्रष्टाचार का प्रश्न ही न रहे। वहीं दूसरी ओर निजी निवेशक वित्तीय संस्थाओं से धन लेकर सड़कों सहित अन्य निर्माण कार्य करें और टोल टैक्स के माध्यम से लागत वसूल कर सरकार के सुपुर्द कर दें। लोकतांत्रिक व्यवस्था में इस प्रकार का साफ-सुथरा एवं निष्कलंक कार्य से आने वाले समय में राष्ट्रीय विकास के कीर्तिमान स्थापित किए जा सकते हैं। ❑

यदि मनुष्य सीखना चाहे, तो उसकी हर भूल उसे कुछ शिक्षा दे सकती है।

—महात्मा गांधी

कुरुक्षेत्र 40 वर्ष पहले

पंचायतें और सहकारी समितियां *

जवाहरलाल नेहरू

पहली बात तो यह है कि आप सब लोग इससे वाकिफ हैं, जानते हैं, जाहिर है, कि पंचायत या लोकल सेल्फ गवर्नमेंट किसी भी सरकारी अथवा गवर्नमेंट स्ट्रक्चर की बुनियाद है—जैसा कि होना चाहिए और जैसा कि हम चाहते हैं और अगर बुनियाद सही नहीं है तो दिक्कतें हर दर्जे पर, ऊपर के दर्जे पर होंगी। हर एक यह जानता है, हर एक कहता है, लेकिन फिर भी उस पर उतना अमल नहीं होता है। दूसरे यह कि हम जानते हैं कि जो लोग पंचायतों में आते हैं, उनमें खूबियां हैं और कमजोरियां हैं। बहुत कमजोरियां हैं। आपस में झगड़ते हैं, आपस में दलबंदी होती है। एक-दूसरे की शिकायत करते हैं। सब बातें हम जानते हैं और यह जानकर यह कहा गया है कि इनके ऊपर बहुत ज्यादा भरोसा नहीं किया जा सकता और इनकी रोकथाम करने का, इनको सिखाने और समझाने का कोई और इंतजाम करना चाहिए। यह एक माकूल बहस है। लेकिन यह बहस कि हम अपने आम लोगों पर ज्यादा भरोसा नहीं कर सकते क्योंकि डर है कि वह गलती करेंगे—वह गलती करते हैं और करेंगे—इस बहस को अगर आप एक दफा मंजूर कर लें तो वह हमें दूर तक पहुंचा देती है। फिर उसके माने यह हैं कि जब हमें खुद एक चीज में भरोसा नहीं है, एक इंस्टीट्यूशन में भरोसा नहीं है तो जाहिर है कि हम उसको बहुत नहीं बढ़ाएंगे। उस तरफ बढ़ने में हमारे दिमाग में रुकावट होगी।

छोटी पंचायतें

यह जो मैंने कहा कि सेंट्रलाइजेशन की जरूरत तो है ही, लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि डिसेंट्रलाइजेशन की इंतहाई जरूरत है। हमारे मुल्क में हजारों गरीब लोग पैदा होते हैं और किस्मत से हजारों लोग इस मुल्क में ऐसे हैं जिन्हें कभी भी किसी चीज की जिम्मेदारी लेने और बात करने का मौका ही नहीं मिलता है। उन्हें कभी भी किसी काम को करने का मौका ही नहीं दिया जाता है। जो बुनियादी बात है वह इन्साफ की है, वह नहीं होती है, हल्का होता है, गरज कि इस लंबी बहस के बाद मैं फिर इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि डिसेंट्रलाइजेशन की हमें बहुत जरूरत है। एडमिनिस्ट्रेशन में और बातों में भी सेंट्रलाइजेशन को रख कर भी हमें डिसेंट्रलाइजेशन की जरूरत है। एडमिनिस्ट्रेशन की हालत को देखकर आप डिसेंट्रलाइज करते-करते फिर पंचायत पर पहुंच जाते हैं। जाहिर है वह सबसे नीचे का यूनिट है। चाहे वह यूनिट बड़ा हो या छोटा, यकायक मैं नहीं कह सकता कि उनमें फर्क है। लेकिन मैं इस सवाल को इस तरह से देखूंगा कि इनमें लोग किस तरह से काम करते हैं। इसका असली पहलू यह है कि उसमें कितने लोग आसानी से मिल कर, एक-दूसरे को जान कर काम कर सकते हैं।

एक-दूसरे को जान कर भी अगर वे एक-दूसरे के गैर हो जाएं, एक-दूसरे पर भरोसा न करें, एक-दूसरे को न जानें तो उनको हर काम करने में परेशानी हो जाएगी। इस तरह से आपसी झगड़े होंगे और किसी दूसरे आदमी को फैसला करना होगा, चाहे वह गलत हो या ठीक। अगर हमारी पंचायतों में इस तरह की बात रही तो वे तरक्की नहीं कर सकेंगी। अगर उनको अच्छा तजुर्बा हासिल नहीं होगा तो उनकी 'ग्रोथ' जल्दी नहीं होगी और वे जिम्मेदारी का काम नहीं संभाल सकेंगी। इसलिए पंचायतों को ऐसा होना चाहिए जिसमें लोगों का रिश्ता एक-दूसरे से हो सके, एक-दूसरे की जानकारी हो सके, एक-दूसरे के खानदान को जान सकें और कुछ इधर-उधर की बातें जानी जाएं। हमारे यहां पुराने जमाने से यह दस्तूर चला आ रहा है कि एक गांव में एक पंचायत हो। यह एक पुराना सवाल है। यकीनन गांव बहुत छोटे भी हैं, बड़े भी हैं, तो यह कहना मुश्किल हो जाता है कि आसपास के छोटे गांव वालों को बड़ों में मिला दिया जाए। लेकिन मैं इसको बड़ा खतरनाक समझता हूं। इसका नतीजा यह होगा कि एक माने में वे छोटे गांव वाले लोग खो जाएंगे और उनकी समझ में कोई बात नहीं आएगी। इसलिए इस चीज पर काबू पाने के लिए छोटी पंचायतों को होना चाहिए जिससे लोग एक-दूसरे को जान सकें। चाहे वह पंचायत दो-चार छोटे गांव की ही क्यों न हो।

*दिसंबर 1958 अंक से उद्धृत

इन्सान की मेहनत का फायदा

इस मामले में रुपये-पैसे का सवाल उठता है और उसको कभी न कभी हल करना है। जबकि आजकल चारों तरफ मुल्क में गरीबी फैली हुई है, फिर भी सब लेवल में काम हो रहा है तो हमें इस काम में पीछे नहीं रहना चाहिए। कोई भी काम पंचायत बनाने के बारे में किया जाए, तो इस बात का ख्याल रखा जाए कि पंचायतें छोटी होनी चाहिए। लेकिन इस समय मुल्क में कुछ इस तरह का इंतजाम हो रहा है यानी 'फैडरेशन आफ पंचायत' का एक लार्जर सर्किल हो जिसमें ज्यादा रिसोर्सेज होते हैं। रिसोर्सेज के माने क्या होते हैं? जैसा कि मैंने आप लोगों से कहा कि वह पैसा होता है इन्सान की मेहनत का। पैसा आसमान से टपकता नहीं है। वह तो इन्सान की मेहनत से पैदा होता है। यह बात है और हम इसे तसलीम करते हैं कि हमने इन्सान की मेहनत का पूरी तरह से फायदा नहीं उठाया, हालांकि गांधी जी ने इस बात पर जोर दिया था और हमारा कुछ ध्यान भी इस तरफ गया था लेकिन हम इस चीज का पूरी तरह से फायदा नहीं उठा सके। आप देखेंगे कि हमारे पास कोई बहुत तफसील तो नहीं है लेकिन चीन में जो कुछ हो रहा है वह सबको मालूम है। वहां एक जबरदस्त सेंट्रल गवर्नमेंट है, उनके सिद्धांत हमारे सिद्धांत से बिलकुल अलग हैं। वे कम्युनिस्ट हैं लेकिन फिर भी उनके काम करने का तरीका डिसेंट्रलाइजेशन का है, जिससे वे वहां पर आम लोगों में काम करने की काबलियत ले आए हैं। हमारे यहां भी काफी लोग हैं, 40 करोड़ के करीब, मगर चीन में हमारे यहां से डेढ़ गुने या दुगने हैं यानी 60-65 करोड़ के करीब होंगे। तो यह जरूरी हो जाता है कि हमारे यहां भी उन लोगों में उत्साह पैदा किया जाए जो काम करने को तैयार नहीं हैं या नहीं करते हैं। इसके लिए आपको रिस्क (जोखिम) लेना होगा। अगर आप रिस्क नहीं लेना चाहते हैं तो लोग काम नहीं सीख सकते। अगर आप कुछ रिस्क लेने को तैयार हैं तो इसके माने यह हैं कि आप जिम्मेदारी लीजिए। हो सकता है कि इस जिम्मेदारी को लेने में कुछ नुकसान हो। नुकसान हो जाए तो हो, लेकिन इससे वे लोग काम करना सीखेंगे। चुनांचे मेरा इस मामले में दृष्टिकोण, नुक्तेनिगाह यह है कि हमें लोगों को तैयार करना है जिम्मेदारी उठाने के लिए। मुझे लोगों पर भरोसा है, मुल्क के लोगों पर भरोसा है कि वे मिल कर काम करेंगे। एक-दूसरे के साथ मिल कर काम करेंगे और एक-दूसरे की बातों को समझेंगे। इस तरह हम हर एक को काम करने का मौका देंगे और अगर कोई इसको बेकार समझेगा तो उसको सजा भी देंगे।

छोटे कोआपरेटिव संघ

अब मैं आपको पंचायतों के इक्तसादी (आर्थिक) पहलू की तरफ ले जाना चाहता हूं। यह कहा जाता है कि इस चीज को कोआपरेटिव (सहकार) ढंग से चलाया जाना चाहिए। पर मैं बार-बार कहता हूं कि सहकार संघ गांव-गांव में होने चाहिए। दो-चार छोटे गांवों को मिलाकर, बड़े गांवों को मिलाकर नहीं। तो फिर यकीनन कहा जा सकता है कि उनके पास रिसोर्सेज नहीं होंगे, पैसा नहीं होगा। वे करेंगे क्या? इसके लिए बड़े हलके होने चाहिए, चालीस-पचास और सौ गांवों के। उनसे पैसा मिलेगा, आमदनी होगी। इस तरह से हम पेड वर्कर, सीखे हुए रखेंगे। यकीनन इस तरह से एक-चौथाई आमदनी तो उनको तनख्वाह देने में ही खर्च हो जाएगी। मैं यह नहीं कहता कि कोई योजना नहीं है, लेकिन फिर भी मैं इसको गलत समझता हूं। मैं तो छोटे कोआपरेटिव संघ बनाने के हक में हूं, जिससे लोग अपनी जिम्मेदारी को समझें, एक-दूसरे को पहचानें। चाहे यह कोआपरेटिव संघ एक गांव के हों या तीन गांव के हों, लेकिन वहां के लोग एक-दूसरे पर भरोसा करें। अगर हम 50 या 100 गांवों का एक कोआपरेटिव संघ बनाते हैं तो हमारा किसान, जिसको तजुर्बा नहीं है, वह बहक जाता है और घबरा जाता है। चुनांचे चाहे पंचायते हों, चाहे कोआपरेटिव संघ हों, उन्हें बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए, छोटा होना चाहिए। छोटे गांव के हर एक परिवार में से उसमें एक आदमी जाना चाहिए और उन्हें जिम्मेदारी का दर्जा दिया जाना चाहिए। हां, जो लोग ऊपर से देखने वाले हैं, वे रहें—यह और बात है। लेकिन जिम्मेदारी उनकी है। अगर गलती हुई तो गलती से ही आदमी सीखता है बनिस्बत काबलियत से। गलती होगी तो गांव वाले देखेंगे कि इस शख्स ने गलती की है। इस तरह से खुद गांव वालों को पता चल जाएगा कि किस ने गलती की है और सब से ज्यादा उनके लिए यह एक तालीम होगी। अब इसमें वे बातें भी आ जाती हैं, जैसा कि मैंने आप से कहा कि हमारे सामने बहुत सारे सवाल हैं। अगर मैं उनके कानूनी पहलू बयान करूं तो यह मुश्किल है। मसलन मेरी पक्की राय है कि हिंदुस्तान खुशहाल नहीं हो सकता, जिसको अंग्रेजी में इंडसट्रिलाइजेशन (औद्योगीकरण) करना कहते हैं, बगैर इसके।

चुनांचे पहली बात आप यह महसूस करेंगे कि पंचायत और गांवों की कोआपरेटिव की बुनियादी अहमियत जरूरी है। मैं शर्मिंदा होता हूं आपसे यह कह करके कि अभी दस रोज हुए, मैं यहीं दिल्ली के एक गांव में गया और वहां बड़े जोर से कहा कि वे पंचायत करें। लेकिन उन्होंने कहा कि पंचायत ही नहीं है। यहां दिल्ली से दस मील के फासले पर उन्होंने कहा कि पंचायत हमारे यहां बनी ही नहीं है। बड़ी शर्मिंदगी की बात हुई, क्या कहूं। अभी तक उस पंचायत बिल का एक मसविदा तैयार हो रहा है, कोआपरेटिव की बात तो दूर है। वाकया यह है कि हम यह समझें कि अगर हम छलांग मार कर जल्दी से, ऊपर का काम करके, कुछ सीखे हुए आदमी रख करके, कोई बात हासिल कर लेंगे और आप लोगों को उसमें नहीं लेंगे, तो हम धोखा खाएंगे। मुमकिन है कि शायद आप कुछ कर लें, लेकिन आप अलग जाएंगे, आप दूर तक नहीं जा सकते। इसलिए मैं फिर बार-बार दोहरा रहा हूं कि पंचायत जरूरी है और उसके साथ कोआपरेटिव वहां जरूर हों, एडमिनिस्ट्रेटिव (शासन की) आर्थिक या इकानामिक तौर की। तीसरे मैं कहता हूं कि वहां स्कूलों की जरूरत है। अब इसको आप इस ढंग से अपने-अपने यहां करें, कहीं बड़ी, कहीं छोटी, मगर बुनियादी बातें अपने सामने रखें जो मैंने आपसे कहीं। तब ज्यादा फर्क नहीं होगा, कुछ फर्क अलग-अलग सूबों में शायद हो सकता है।

सामुदायिक विकास

तो आपकी कम्युनिटी डेवलपमेंट स्कीम्स (सामुदायिक विकास योजनाएं) हैं, वगैरा वगैरा। इनके सामने यह एक बहुत बड़ी बात होनी चाहिए कि किस तरह से उनको इस्तेमाल में लाएं, किस

तरह से इन लोगों को अपने काम के लिए, कुछ न कुछ पैदा करने के लिए, इस्तेमाल में लाएं। उनको काम में लाने के तरीके बहुत हो सकते हैं। याद रखिए कि हमारा आब्जेक्टिव क्या है। एक जगह हमने अपना ध्येय डिफाइन किया है— 'सोशलिस्ट कोआपरेटिव कामनवेल्थ' की स्थापना।

उसकी बिलकुल क्या तसवीर हो, इसकी निस्बत कोई पक्की राय मैं एकदम से नहीं दे सकता; हां, मोटी बातें कह सकता हूं। उसमें एक लफ्ज है सोशलिस्ट और एक लफ्ज है कोआपरेटिव। ये दोनों बुनियादी लफ्ज उसमें हैं और यह चीज कोई ऊपर से नहीं हो सकती है। यह नामुमकिन बात है। वह नीचे से ही चल सकती है। उन दोनों की बुनियाद 'नीचे से' है, गांव से है, पंचायत से है, विलेज (गांव की) कोआपरेटिव से है और तभी ऊपर के दर्जे बनते हैं।

अफसरी तरीका छोड़ें

हां, एक बात मैं आपसे अर्ज करना चाहता हूं। कम्युनिटी डेवलपमेंट प्रोग्राम के सिलसिले में पिछले चंद महीनों में या और कभी आपने पंचों के कैंप्स किए। उसके बाद मुझे दो-चार जगह जाने का मौका मिला, पंचों से मिलने का मौका मिला, तो मैंने देखा कि जो पंच उन कैंप्स में गए थे, उनको उससे बहुत फायदा हुआ था। फायदे से मेरा मतलब यह है कि वे जाग उठे थे, अंदर से कुछ बाहर निकल आए थे, उनमें कुछ दिलचस्पी हो गई थी। हालांकि तीन-चार रोज का कैंप था, लेकिन वहां जो कम्युनिटी डेवलपमेंट के अफसरान हैं, उन्होंने वहां लोगों में बैठ कर, उनसे बातें कीं, बहस की, सबसे मिले। तो नतीजा यह हुआ कि कुछ उनके अंदर से बात निकली, वे जागे, दिलचस्पी बढ़ी। तो असल बात यही है कि लोगों को, इंसान को, जगाना है। दूसरे माने में यह कि उसको जिज्ञासा हो जानने की। नहीं तो वह मिट्टी की मूर्ति बना बैठा रहेगा और उसके दिमाग में बात नहीं घुसेगी। यह बात नहीं है कि उसके दिमाग नहीं है। दिमाग है लेकिन उसके दिमाग की खिड़की नहीं खुली है। उसके दिमाग की खिड़की खोलिए और दिल की खिड़की खोलिए तो आसानी हो जाती है, दिमाग और दिल की खिड़की आम तौर से अफसरी ढंग से नहीं खुलती है—यह ख्याल रखिए कि मैंने 'अफसरी तरीका' कहा है, मैंने यह नहीं कहा कि 'अफसर'। अफसरी तरीका न रखें तो खुल सकेंगी, यह साफ बात है। दूसरे यह कि किसी पर आप असर डालना चाहते हैं, उसके दिल और दिमाग की खिड़की खोलना चाहते हैं तो उसको अपने बराबर करना है या अपने को उसके बराबर करना है। यानी बातचीत में, काम करने में, जहां यह ढंग हो कि आप ऊंचाई से देख रहे हैं और कुछ करने को बता रहे हैं तो फिर बहुत मुश्किल बात है, इत्तिफाक से खिड़की खुल जाए तो खुल जाए, लेकिन मुश्किल चीज है। तो कुछ उन्हें ऊपर उठाना है और कुछ अपने को नीचे ले जाना है और उससे एक लेवल पर बात करनी है। हो सकता है कि वह हर एक बात को न समझे, लेकिन उससे इस तरह बात करें कि वह समझे कि आप उसकी इज्जत करते हैं, उसके दिमाग की इज्जत करते हैं। अगर वह यह समझे कि आप उसे बेवफूक समझते हैं तो फिर दरवाजा बंद हो जाता है। यह बात सिर्फ उसके लिए ही नहीं है, यह तो आजकल का दस्तूर है। बच्चों के लिए यही बात है। आप अपने बच्चे से भी बात करें और उसे नालायक समझ कर बात कीजिए तो वह नहीं समझेगा। अगर आप अपने बच्चे को समझदार समझिए तो वह भी एप्रिशियेट करता है और समझता ज्यादा है। तो इसलिए आपको उसके दिमाग की खिड़की खोलने की कोशिश करनी है।

जैसा कि मैंने आपसे कहा कि ये जो छोटे-छोटे कैंप्स हुए जिनमें पिछले थोड़े जमाने में करीब एक लाख पंच गए तो उससे मेरे ख्याल में काफी ज्यादा फायदा हुआ, इस माने में कि वे आम पंच नहीं थे, वे सरपंच थे और जब उनके दिमाग की खिड़की खुली तो वे कुछ और लोगों के दिमागों की खिड़की को खोलेंगे। तो इस तरीके से हम किसी तरह से अपने सरकारी ढंग से निकल जाएं। सरकारी ढंग अपनी जगह पर अच्छा है, लंबे-लंबे आप नोट लिखें, लेकिन उनके एप्रोच में वह बिलकुल नाकामयाब होगा सफल नहीं हो सकता।

महज मैं इसका इशारा आपसे कर सकता हूं और इशारा इसलिए करता हूं कि कुछ मुझे अपनी जिंदगी में—इस खास में नहीं लेकिन आम बातों में—कुछ थोड़ा-सा तजुर्बा हुआ है इन लोगों से मिलने का और बातचीत करने का। जब से मैं मिनिस्टर हो गया हूं तब से कम होता है, अब मुझमें और मामूली किसान में बहुत फासला है। मैं कोई किसान नहीं हूं, मैंने कभी खेती नहीं की है और न मेरे पास खेती के लिए एक गज जमीन भी है। मेरा उससे कोई ताल्लुक नहीं है और न मैं उसे जानता हूं। हां, मैंने पढ़ा है, देखा है, लेकिन इस बारे में अपना तजुर्बा नहीं है, अमली तजुर्बा नहीं है। मेरी पढ़ाई ऐसी हुई कि वह मुझे बिलकुल दूसरी तरफ ले गई, लेकिन फिर भी कुछ कुंजी मेरे पास है जो कि उनके दिमाग और दिल में घुस सकती है। यह यकीन करने की बात है आपके, मैं कोई अपनी तारीफ नहीं कर रहा हूं। वह है क्योंकि मैं उनसे बराबर की तरह से बात करता हूं, मैं उनके दिमाग की इज्जत करता हूं, मैं उनकी इनडिविजुऐलिटी (व्यक्तित्व) की इज्जत करता हूं। नतीजा यह है कि उनकी तरफ से रिस्पांस होता है (जनता अपनाती है) और वह समझते हैं कि हमारी इज्जत हुई।

तो इस ढंग से काम होना है। अफसरी ढंग बिलकुल गलत है और इसमें कई बातें आती हैं। जरूरी बातें नहीं हैं, लेकिन छोटी बातें हैं। आप में से कोई साहब आए, कोई अफसर गांव में आए और बड़ी-बड़ी जीप में बैठ कर आए, इधर-उधर देखा-भाला, पूछा-तांछा और फिर जीप में बैठ कर दूसरे गांव में चले गए। कभी-कभी आप इस तरह देख सकते हैं, लेकिन वह बात कुछ खपती नहीं है। अगर आप उनकी खटिया पर कुछ देर तक बैठते तो ज्यादा असर होता और वह कुछ समझते। नहीं तो वे समझते हैं कि वही हुआ कि अफसर आए और हवा की तरह से वह चले गए। ये छोटी-छोटी बातें हैं लेकिन हैं। ऐसा आमतौर से नहीं होना चाहिए कि आखिर में आपके और उनके बीच में एक दीवार बन जाए। आपकी सारी कोशिश तो यही है कि किसी तरह से आप में और उनमें जो पर्दा है, वह हट जाए और आप उनके दिमाग और दिल पर असर डाल सकें। वह बातें ऊपर से कुछ हो सकती हैं, लेकिन ज्यादा नहीं हो सकती हैं। असल में तो वह एप्रोच है, जिसको आप चाहे इंटेलेक्चुअल (बुद्धिवादी) एप्रोज कहिए,

चाहे इमोशनल (भावात्मक) एप्रोच कहिए, चाहे मेंटल (मानसिक) एप्रोच कहिए, चाहे जो कुछ कहिए, वह लाना है। अगर आप वह कर सकते हैं तो आप कामयाब होंगे। चाहे आपको कुछ इल्म कम भी हो और बातों में, नहीं तो आपका जो इल्म है यह ज़ाया हो जाता है और वह एक दफ्तरी ही रह गया है।

अफसर कुछ दिन गांवों में रहें

इसीलिए मेरा तो ख्याल है कि बड़े-से-बड़े अफसरों को और छोटे-से-छोटे अफसरों को कुछ दिन साल में गांव में काम करना चाहिए। उन्हें किसानों के साथ उन्हीं की तरह काम करना चाहिए, चाहे थोड़े ही दिन करें। यह उनके लिए बहुत मुफीद होगा, उनके स्वास्थ्य के लिए भी मुफीद होगा और उनके काम के लिए मुफीद होगा। इसमें कोई शक नहीं। मेरी तो एक दूसरी भी राय है कि हिंदुस्तान में हर एक आदमी को, हर एक लड़के और लड़की को चाहिए कि जैसा और मुल्कों में मिलिटरी सर्विस कंपल्सरी है, कंसक्रिप्शन होता है, वैसे ही हमारे यहां सोशल सर्विस कंपल्सरी हो। मिलिटरी सर्विस नहीं, लेकिन मिलिटरी डिसिप्लिन (अनुशासन) के साथ। सिवाय बंदूक, तलवार नहीं होंगे, लेकिन और सब मिलिटरी होगा जहां तक डिसिप्लिन का सवाल है। खैर, यह दूसरी बात है लेकिन यहां मैं आपको गौर करने को कहूंगा। कोई ऐसा सिलसिला बनाया जाए जिससे हर अफसर कुछ न कुछ दिन, चाहे एक हफ्ता ही सही, गांव में जाकर किसानों के कामों में शरीक हो, जिनसे वह जिनको सिखाने की कोशिश करता है, जैसे खाद या कम्पोस्ट बनाना है तो खुद जाकर करे। ऐसा करने से किसानों के ऊपर कहीं ज्यादा असर होगा और वे भी बहुत कुछ सीखेंगे।

तो मैं तो आपको एप्रोच बता सकता हूं। जैसा मैंने आपसे कहा, मैं तो कभी पंच नहीं रहा किसी पंचायत का। पंचों से मिला हूं, बातचीत की है। उनकी क्या प्राबलम्स (समस्याएं) होती हैं, आप ज्यादा जानें, लेकिन जो कुछ भी हो, आपका एप्रोच इंटेलेकचुअल होना चाहिए। लेकिन वह काफी नहीं है। अगर आपका इमोशनल एप्रोच नहीं है—उस व्यक्ति को, मर्द या औरत को अपनाने का, आप उसके पास जाएं तो बराबर की हैसियत से जाएं, कोई ऊंच-नीच के ख्याल से नहीं और अफसर की हैसियत से नहीं और हमेशा याद रखिए कि जितनी जिम्मेदारी आप देंगे, उतना आप सीखने का मौका देते हैं। अगर नहीं देंगे तो वह समाज की खराबी करेगा, कोई सीखेगा नहीं। आप उसको अज्ञानता के गढ़े से निकाल नहीं सकेंगे। ❑

[स्थानीय स्वशासन की केंद्रीय परिषद की बैठक में दिए गए भाषण से]

(पृष्ठ 31 का शेष) **पंचायती राज बना वरदान**

ठीक इसी तरह मध्य प्रदेश का एक ओर गांव पंचायती राज का लाभार्थी बना। होशंगाबाद जिले के बाबई जनपद पंचायत के आदिवासी बहुल गांव जावली में रहने वाली लक्ष्मी बाई अपने पति के साथ टूटी-फूटी टपरिया में रहकर गांव में ही मजदूरी का कार्य करती थी। गर्मी, ठंड और बरसात तीनों ही मौसम में उन्हें न जाने कितने कष्ट उठाने पड़ते थे। लेकिन कब किसकी किस्मत का तारा जगमगा उठेगा, कौन जानता है। वर्ष 1990-91 में ग्रामीण विकास मंत्रालय की इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत कुटीर बनाने के लिए लक्ष्मी बाई को 6,000 रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई।

गर्मी के तपन, ठंड की मार और बरसात के कहर से तो लक्ष्मी बाई का परिवार निजात पा गया था, अब सामने समस्या थी रोजी-रोटी की। एक बार फिर लक्ष्मी बाई ने समन्वित ग्रामीण विकास योजना का सहारा लिया।

इस बार लक्ष्मी बाई का साथ दिया पंचायत ने। लक्ष्मी बाई को वर्ष 1996-97 में समन्वित ग्रामीण विकास योजना के अंतर्गत कपड़ा व्यवसाय हेतु 20,000 रुपये का ऋण और अनुदान दिलाया गया। आज लक्ष्मी बाई सफलतापूर्वक कपड़े का व्यवसाय कर रही है। वह अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए कृतसंकल्प है और पंचायत का आभार मानती है। उसका कहना है कि आज वह जिस स्थिति में है, वह पंचायत और सरकार के कार्यक्रमों की बदौलत है।

अपने परिवार को आर्थिक रूप से खुशहाल बनाने की तमन्ना किसके मन में नहीं होती। मुरैना के शिव नगर आयपुरा में रहने वाली रानी बाई के भी सपने कुछ उसी तरह के थे। रानी बाई के पति श्री रामरतन जाटव कारीगर का कार्य करते हैं और घर में पति के अलावा दो छोटे-छोटे बच्चे हैं। आमदनी सिर्फ 2,500 रुपये महीना थी। पति के अकेले की कमाई से परिवार का पालन-पोषण काफी कठिनाई से होता था। इस कठिनाई को देखते हुए रानी बाई ने परिवार की आय बढ़ाने की सोची और पंचायत ने रानी बाई को भरपूर सहयोग दिया। पंचायत ने जवाहर रोजगार योजना के तहत छोटा-मोटा व्यवसाय करने की सलाह दी। रानी बाई को 15 हजार रुपये का ऋण और पौने चार हजार रुपये का अनुदान दिलाया गया। सपने रंग भरने लगे और रानी बाई को परचून की दुकान से 1,000 रुपये मासिक आमदनी होने लगी। इसके अलावा सिलाई करके वह 400-500 रुपये प्रतिमाह और कमाने लगी। धीरे-धीरे कर्ज भी चुका दिया।

पंचायतों के सहयोग और सरकार की विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से बलीराम मंडलोई, लक्ष्मी बाई और रानी बाई जैसे न जाने कितने आर्थिक रूप से कमजोर परिवार आज स्वावलंबन की ओर बढ़ रहे हैं।

यह बात सिद्ध हो चुकी है कि हमारे देश का विकास गांवों के विकास से ही संभव है और हमारे गांवों का विकास संभव है पंचायती राज से। गांधी जी के सपनों को साकार कर सकेंगी हमारी ये पंचायतें। सरकार योजनाएं तो बहुत बनाती है लेकिन उन्हें सफलता का अमली जा पहनाती हैं पंचायतें। ❑

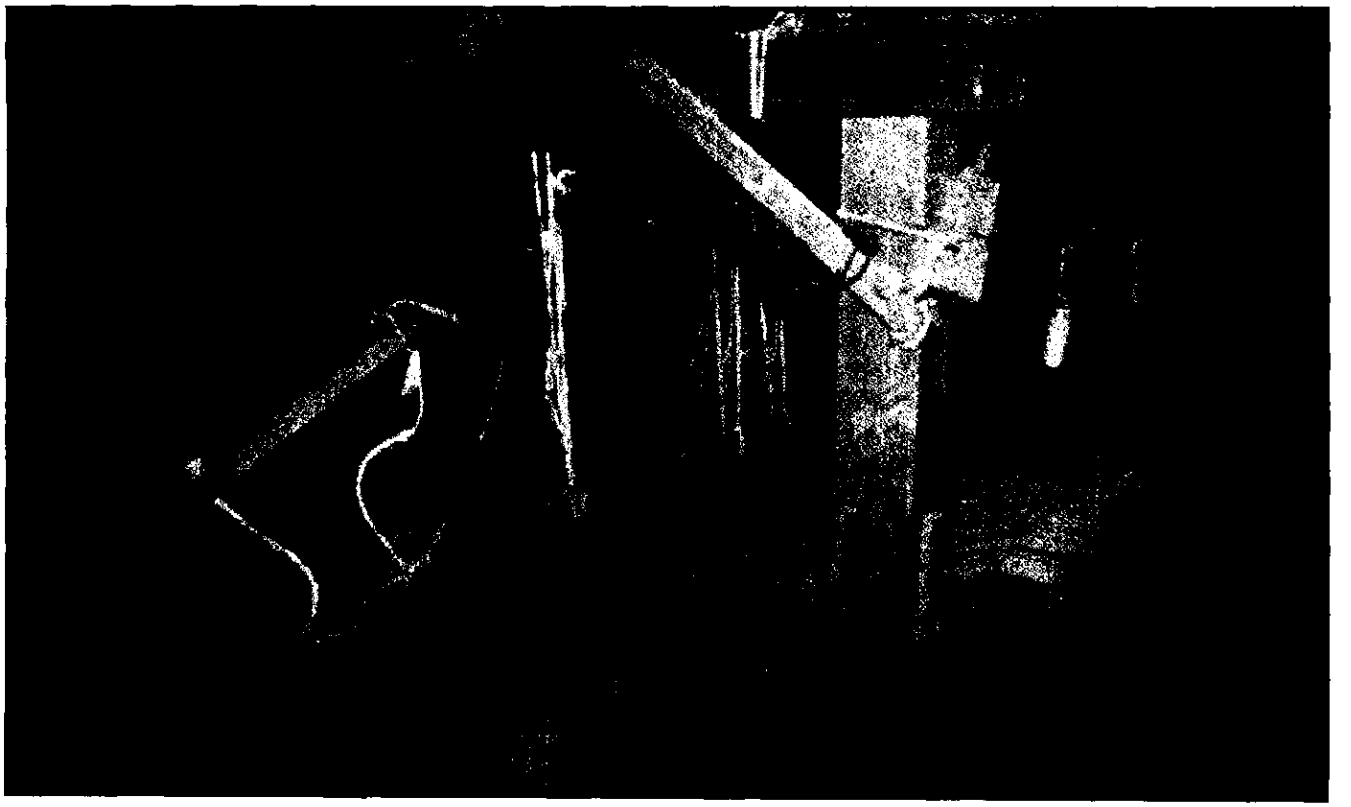

- *हस्तशिल्प से समृद्धि*

डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एल) 12057/98
आई.एस.एस.एन. 0971-8451
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

P&T Regd. No. D (DL) 12057/98
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

श्रीमती सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित। मुद्रक तारा आर्ट प्रेस, बी-4 हंस भवन, नई दिल्ली-110002. प्रकाशन स्थान : 655, 'ए' विंग, निर्माण भवन, नई दिल्ली-110001. सम्पादक : बलदेव सिंह मदान